संस्कृति एवं संगीत

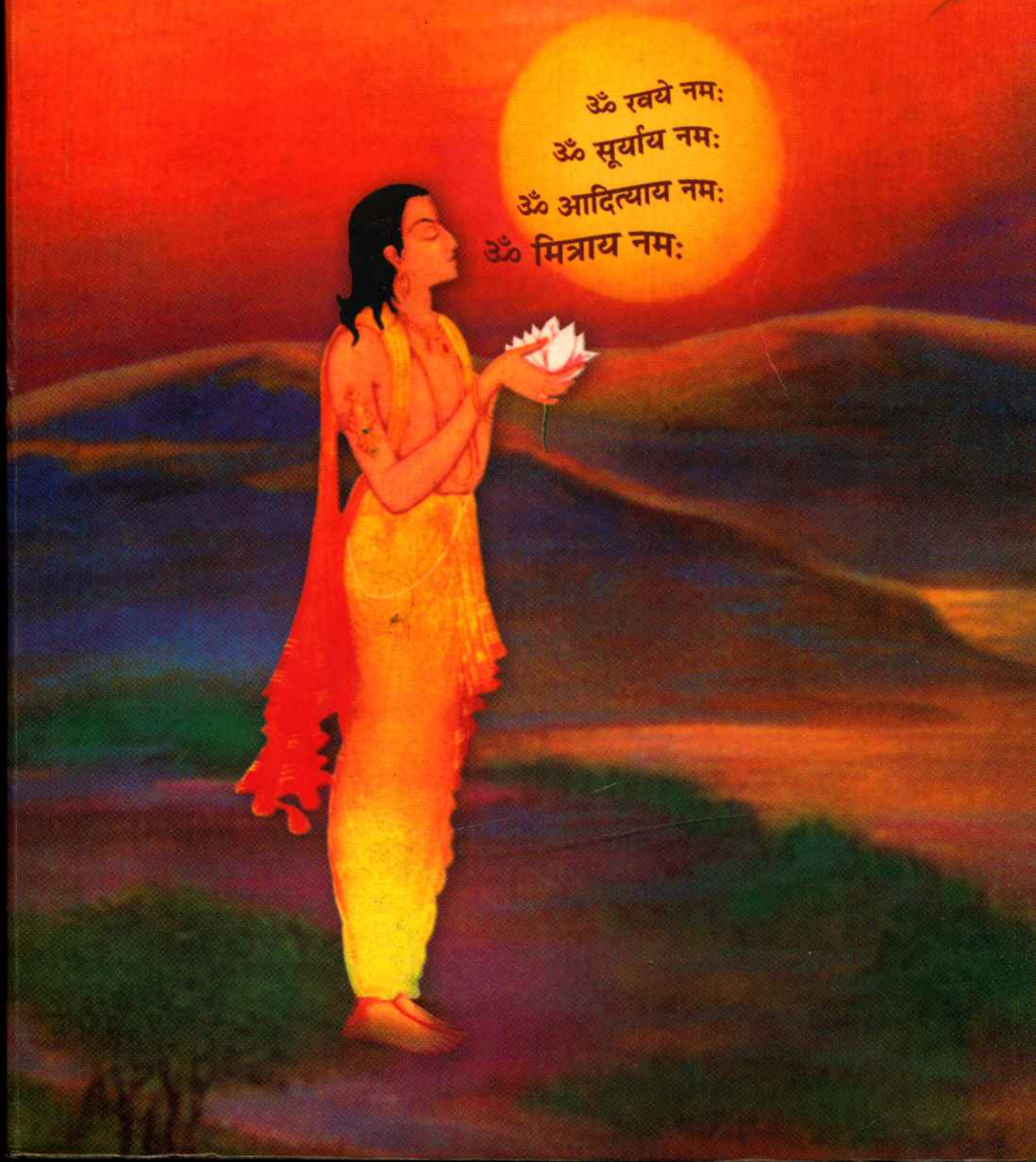

जीवन की मधुरतम अभिव्यक्ति का नाम है

संगीत

जीवन का सब नैराश्य हर लेता है,
भर प्राणों में नव रूप रंग देता है॥
सुर, ताल, छंद, गति, लय का सच्चा साधक,
चेतन क्या! जड़ को वश में कर लेता है॥

शब्द हो जाये निरर्थक भाव के अतिरेक में जब।
भावना निःसीम मन की वहन करता नृत्य ही तब।

AKSHAT T.

ARSHAT TRIPATHI

संस्कृति एवं संगीत

संपादक

कृष्णा गुप्ता

प्रकाशक

दयालोक प्रकाशन

महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर समिति

28-A, शिलाखाना, रसूलाबाद घाट रोड, तेलियरगंज

इलाहाबाद - 211 004

प्रकाशक :

दयालोक प्रकाशन

महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर समिति

28-A, शिलाखाना, रसूलाबाद घाट रोड, तेलियरगंज

इलाहाबाद - 211 004

दूरभाष : 2546538

© प्रकाशकाधीन

मुद्रक :

शाकुन्तल ऑफसेट

34, बलरामपुर हाउस

इलाहाबाद - 211 002

दूरभाष : 2641123

संप्रेरणा

राष्ट्रीय जीवन को गति एवं दिशा प्रदान करने में शिक्षा की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस समय हमारे देश में विदेशी भावापन्न अनेक शिक्षण संस्थाएँ हैं, जिनका वाह्य कलेवर आकर्षक है पर वे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से शून्य हैं। अतः इस बात की परम आवश्यकता है कि देश के कोने-कोने में ऐसी शिक्षण संस्थाओं का निर्माण हो जो प्रगतिशील हों, जिनकी जड़ें हमारे सांस्कृतिक मूल्यों में निहित हों, जिनका लक्ष्य हो व्यक्तित्व का पूर्ण एवं संतुलित विकास तथा मानवीय गुणों का संवर्धन करना। माँ सरस्वती के पावन मन्दिर ही हमारे राष्ट्रीय जीवन को उन्नत एवं ज्योतिर्मय बनाने में सक्षम होंगे। इसी लक्ष्य की पूर्ति करने हेतु स्वर्गीय लोकमणि लाल जी ने जुलाई 1986 में महर्षि पतञ्जलि विद्या मन्दिर की इस विश्वास के साथ स्थापना किया कि एक दिन यह विद्यालय ज्ञान विज्ञान और संस्कृति का उज्ज्वल केन्द्र बनकर प्रतिष्ठित होगा तथा चरित्रवान नागरिकों के नवनिर्माण में पूर्ण योगदान करेगा।

विद्यालय के संस्थापक अध्यक्ष स्वयं मूलतः इंजीनियर थे तथा भारत में शीतगृह उद्योग के जनक के रूप में सुविख्यात थे। उन्होंने 1937-38 में भारत के प्रथम शीतगृह (कोल्ड स्टोरेज) की मेरठ में स्थापना कर उद्योग तथा किसानों के हित में नये पथ का सृजन किया, साथ ही देश की सम्पदा के संरक्षण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आपके हृदय में शिक्षा के प्रति गहन अनुराग था। महामना मदन मोहन मालवीय जी के व्यक्तित्व से संप्रेरित एवं राष्ट्र सेवा में समर्पण का भाव लिये एक ऐसे शिक्षण केन्द्र की स्थापना की जिसका लक्ष्य है शिक्षा में भारतीय अस्मिता को अक्षुण्ण रखते हुए ज्ञान विज्ञान को आत्मसात करना। उनमें भारत की ऋषि संस्कृति के प्रति गहन निष्ठा थी अतः विद्यालय का नाम महर्षि पतञ्जलि के यशस्वी नाम से जोड़ा, एक संकल्प के साथ। महर्षि पतञ्जलि ने पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिये योगदर्शन का प्रतिपादन किया था। स्वस्थ व सबल व्यक्तित्व के लिये लोकमणिलाल जी भी सदा योग व प्राणायाम पर विशेष बल देते रहे। हमेशा युक्ताहार-विहार के समर्थक रहे। शास्त्रीय संगीत से उन्हें विशेष प्रेम था। बच्चों को गाने तथा वीणा, सितार,

बाँसुरी, तबला आदि वाद्य बजाने के लिये सदैव प्रेरित करते थे। अतः विद्यालय में प्रारम्भ से ही शारीरिक शिक्षा एवं योग के साथ-साथ संगीत शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है।

उनका स्वप्न था.....

"एक शिक्षा केन्द्र स्थापित करना जहाँ पर समर्पित शिक्षकों द्वारा बच्चों की अन्तर्निहित क्षमताएँ विकसित की जायेंगी, उन्हें एक सुसंस्कृत तथा सृजनशील मानव बनाया जायेगा, वे राष्ट्र के विकास में अपना अभीष्ट योगदान करने में समर्थ होंगे। यह संस्था इसी प्रकार के ज्ञान के प्रकाश स्रोतों के अभ्युदय के लिए केन्द्रीय भूमिका अदा करेगी।"

इसी स्वप्न को साकार करने हेतु हम कृतसंकल्प हैं। इसी स्वप्न को चरितार्थ करने के लिये हमारी नयी शाखा 'गंगागुरुकुलम' की स्थापना भी की गई है। लोकमणिलाल जी का दृढ़ विश्वास था कि समाज के उदार सहयोग से ही यह ज्ञानयज्ञ सम्पन्न होगा। उनका विश्वास ही हमारे लिए अजस्र प्रेरणास्रोत है।

- *डॉ० कृष्णा गुप्ता*
सचिव

अपनी ओर से

विश्रृंखलित होते हुए समाज को सुव्यवस्थित करने हेतु नैतिक मूल्यों के संरक्षण एवं चारित्रिक दृढ़ता का महत्त्व अपरिहार्य है। संयम एवं साधन द्वारा प्रकृति का परिष्कार संस्कृति कहलाती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का कथन है –

युग-युग के संचित संस्कार, ऋषि मुनियों के उच्च विचार ।
धीरो-वीरों के व्यवहार, हैं निज संस्कृति के शृंगार ।।

प्रत्येक राष्ट्र में बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जागरूकता लाने का सशक्त माध्यम शिक्षा है। प्रत्येक राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था वहाँ की राष्ट्रीय चेतना, संस्कृति एवं दर्शन की सर्वोच्च अभिव्यक्ति होती है। विश्वगुरु भारत की तपोमूला संस्कृति गंगा की तरह पवित्र, समुद्र की तरह विशाल तथा गिरि शिखरों की तरह उन्नत है। श्रेय और प्रेय, अभ्युदय व निःश्रेयस दोनों को समाहित कर वह विश्व के कोने-कोने को ज्योतिर्मय करती आ रही है। आध्यात्मिक एवं भौतिक मनीषा वैज्ञानिक प्रगति पर नैतिक नियन्त्रण के पक्ष में हैं। भारत का जीवन दर्शन शिक्षा को मात्र विविध जानकारियों का ढेर नहीं अपितु एक ऐसी अनुभूति मानता है जो समग्र जीवन निर्माण, व्यक्तित्व निर्माण तथा चरित्र निर्माण में सहायक हो। इसी उदात्त उद्देश्य से प्रेरित हो महर्षि पतंजलि विद्या मंदिर की स्थापना की गई जिसका विस्तार 'गंगा गुरुकुलम्' के रूप में हुआ।

निःसंदेह बहुआयामी वर्तमान शिक्षा अनन्त ज्ञान का भण्डार है किन्तु सामाजिक चेतना से सम्पन्न तेजस्विता, पूर्ण समर्पण एवं अर्जन की अपेक्षा विसर्जन की भावना से ओतप्रोत राष्ट्रीय अस्मिता को जीवन्त बनाये रखने में पूर्णतः सक्षम नहीं है।

अध्ययन में तेजस्विता तभी आती है, जबकि उसके पीछे चरित्र हो। शिक्षण में तेजस्विता तब आती है जबकि शिक्षक में चरित्रबल हो, उसके आचरण में उर्जा हो और तभी वह विद्यार्थी का चरित्र गठन करने में सक्षम हो सकता है। हमारा उद्देश्य है भारतीय जीवन मूल्यों को आधुनिक विश्व के रचनात्मक, बौद्धिक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ

आत्मसात करना। 'प्रज्ञानं ब्रह्म' हमारा आदर्श वाक्य इसी उद्देश्य को प्रतिध्वनित करता है। छात्र-छात्राओं के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों के बीच समरसता स्थापित करना तथा उन्हें वैज्ञानिक, चिन्तक, दार्शनिक, डाक्टर बनाने के साथ चरित्रवान एवं संवेदनशील मानव बनाना ही हमारा परम लक्ष्य है।

'संस्कृति और संगीत' नामक यह पुस्तक इन्हीं लक्ष्यों की संप्राप्ति की दिशा में एक लघु प्रयास है। इस पुस्तक का संशोधित एवं प्रबर्धित द्वितीय संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। देश के भावी नागरिक अपने गौरवमयी ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पहलू से निरन्तर परिचित होते रहें इसी उद्देश्य से कुछ नवीन विषयों का प्रस्तुत संस्करण में समावेश किया गया है।

इस ग्रन्थ के पुनः प्रकाशन में हिन्दी, संस्कृत एवं संगीत विभाग के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं का विशेष सहयोग मिला।

श्री उपेन्द्र त्रिपाठी जी ने प्रेम एवं लगन से इस पुस्तक को मुद्रित कर हमें अनुग्रहीत किया। मैं पुनः सभी सुहृदजनों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके स्नेह भरे सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हुआ।

- डॉ० कृष्णा गुप्ता

विषय-क्रम

भाग (क) : संस्कृति

1.	महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर : एक ज्योतिर्मय ज्ञान केन्द्र	1
2.	गुरुपूर्णिमा का पुण्य प्रसाद	1
3.	महर्षि पतञ्जलि : लोकमंगलकारी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	6
4.	विद्यालय का आदर्श वाक्य - 'प्रज्ञानं ब्रह्म'	10
5.	विद्यालय के छात्र-सदन	11
6.	दशावतार का प्रयोजन	17
7.	श्रीमद्भगवद्गीता	29
8.	स्थितप्रज्ञ के लक्षण	33
9.	श्रीरामचरितमानस के स्वाध्याय की अनिवार्यता	41
10.	सम्पूर्ण रामायण	43
11.	हनुमानजी का चरित्र	52

भाग (ख) : राष्ट्रदेवो भव

12.	सफल छात्र-जीवन हेतु कुछ प्रेरक सूत्र	57
13.	चरित्र निर्माण	66
	(क) चरित्र निर्माण के आवश्यक तत्त्व	67
	(ख) व्यक्तित्व विकास में बाधक तत्व	69
	(ग) देवी सम्पदा	71
14.	हमारी संस्कृति के प्रतीक चिह्न	72
15.	प्रतीक दर्शन	76
16.	प्रेरक कथाएँ	78
17.	महर्षि पतञ्जलि विद्या मन्दिर-गंगागुरुकुलम्	92
18.	गंगागुरुकुलम् के छात्र-सदन	97

भाग (ग) : संगीत

19.	विद्यालय कुलगीत	116
20.	अपने पतञ्जलि विद्या मन्दिर पे हमें अभिमान है।	117
21.	ये हमारा गंगागुरुकुलम् !	118
22.	गणेश वन्दना	119
23.	सरस्वती वन्दना	120
24.	नमन	122
25.	मातृ वंदना	126
26.	प्रेरणा	133
27.	स्तवन	136
28.	शुभ जन्मदिन	138
29.	Prayer	139
30.	लक्ष्य न ओझल होने पाए	141
31.	प्रेरणा गीत	142
32.	जय जन भारत	143
33.	स्वरलिपि	144
34.	सारे जहाँ से अच्छा	153
35.	स्वरलिपि	154

• • •

खण्ड (क) संस्कृति

महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर : एक ज्योतिर्मय ज्ञान केन्द्र

महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर की स्थापना जुलाई, 1986 में गुरु पूर्णिमा के दिन हुई। विद्यालय के संस्थापक अध्यक्ष श्री लोकमणि लाल जी का यह दृढ़ विचार था कि किसी भी देश की संस्कृति और सभ्यता को अक्षुण्ण बनाये रखने में वहाँ के विद्यालयों एवं शिक्षकों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उनका विश्वास था कि शिक्षा द्वारा ही राष्ट्र का निर्माण संभव है, ऐसी शिक्षा जो पुरातन और नूतन दोनों पद्धतियों को आत्मसात कर सर्वांगीण व्यक्तित्व का सृजन कर सके। अतः उन्होंने यह संकल्प किया कि वे एक ऐसे विद्यालय की स्थापना करेंगे जिसमें समय की मांग को देखते हुए, शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी भाषा हो, पर भारतीय परिवेश, संस्कृति और नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया जाय। 'महर्षि' शब्द उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति अडिग निष्ठा की उद्घोषणा है।

शरीर, मन, वाणी के संतुलित विकास के नियम पतञ्जलि के दर्शन में निहित हैं, और यही विद्यालय का मूलमंत्र है। पतञ्जलि के यशस्वी नाग से जुड़ा यह विद्यामंदिर विद्यार्थियों के चतुर्मुखी एवं पूर्ण विकास के प्रति कृतसंकल्प है। हमारा लक्ष्य है - हम अपनी मूलभूत पहचान को बनाये रखते हुये अधुनातम विश्व के साथ सुदृढ़ कदमों से चल सकें।

छात्र-छात्राओं के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियों के मध्य संतुलन स्थापित करना - हमारा उद्देश्य है। तीर्थराज प्रयाग के त्रिवेणी संगम का हमारे लिये यही एक मौन संदेश है। इस विद्यामंदिर को ज्ञान, विज्ञान और संस्कृति का एक ज्योतिर्मय केन्द्र बनाना तथा सुसंस्कृत और चरित्रवान् नागरिकों का निर्माण करना हमारा अभीष्ट है।

गुरुपूर्णिमा का पुण्यप्रसाद

वर्ष 1986 की गुरु पूर्णिमा के पावन पर्व पर महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' का उदात्त मंत्र लिए, ज्ञान का दीप प्रज्ज्वलित करने, भारतीय संस्कृति के शाश्वत

मूल्यों तथा ज्ञान-विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों में साञ्जस्य स्थापित करने हेतु प्रयाग की पुण्यभूमि पर स्थापित किया गया।

आषाढ़ माह की पूर्णिमा को गुरुपूर्णिमा कहते हैं। गुरु पूर्णिमा को व्यासपूर्णिमा भी कहते हैं, क्योंकि भगवान वेदव्यास ने ही वेद, पुराण, उपनिषद्, महाभारत, आदि ग्रन्थों की रचना की थी, अतः उन्हें आदि गुरु का गौरव मिला। उन्हीं के जन्म दिवस को गुरु पूर्णिमा के नाम से जाना जाता है।

गुरुपूर्णिमा के दिन परमपूज्य गुरु के चरणों में श्रद्धा के पुष्प सादर अर्पित किए जाते हैं। पूर्णिमा का पूर्ण चंद्र ज्ञान की पूर्णता की ओर संकेत करता है। गुरु का अर्थ है भारी अर्थात् ज्ञान से पूर्ण गम्भीर व्यक्तित्व, गुरुत्व - जिसमें आकर्षण हो, पूज्य पुरुष, ज्ञान की ज्योति को जगाने वाला आदर्श व्यक्तित्व, अज्ञानता के अंधकार को दूर करने वाला, दीपपुंज, हमारी सारी जड़ताओं को नष्ट करने वाली दिव्य शक्ति।

महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर की नींव गुरु पूर्णिमा के दिन कांचीकामकोटि पीठाधिपति जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी जयेन्द्र सरस्वतीजी के करकमलों द्वारा रखी गई। उनके आशीर्वाद से यह विद्यालय विकास के पथ पर उत्तरोत्तर अग्रसर हो रहा है।

गुरु की महिमा :

हमारी संस्कृति में, समाज में, साहित्य में 'गुरु' गौरवपूर्ण एवं चिर-काल से ही वंदनीय रहा है। गुरु का गौरवगान करते हुए उन्हें देवतुल्य माना गया है, यथा-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु तथा गुरु ही महेश हैं। गुरु साक्षात् परमब्रह्म परमेश्वर हैं। ऐसे गुरुवर को नमस्कार है।

'गु' का तात्पर्य है अंधकार और 'रु' का तात्पर्य है नाश - अर्थात् जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए, वही गुरु है। वास्तव में गुरु के दिशानिर्देश से ही गंतव्य तक पहुँचा जा सकता है, जैसाकि अपने अतीत और इतिहास में हम पाते हैं। इनसे ही प्रेरणा लेकर अपने लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है, जो सभी से अपेक्षित है।

'गुरु' शब्द से ही गौरव, गरिमा, गुरुत्व, गुरुत्वाकर्षण जैसे शब्द बने हैं, जो संस्कृति-सार हैं।

जीवन में यदि सद्‌गुरु की प्राप्ति हो जाय तो जीवन नौका पार हो जाती है। गुरु एक सच्चे शिष्य पर ज्ञान लुटाकर परम सन्तोष व शान्ति का अनुभव करता है। सम्भवतः इसीलिए अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में श्री रामकृष्ण परमहंस ने स्वामी विवेकानन्द को सब कुछ प्रदान करते हुए कहा था - ''नरेन्द्र! आज अपना सब कुछ तुझ पर लुटा कर मैं खाली हो गया हूँ रे।'' सत्‌गुरु के सानिध्य में रहने से मलिन जीवन निर्मल होने लगता है। अज्ञान का पर्दा हटते ही प्रकाश की किरण झिलमिलाने लगती हैं।

गुरु का महत्त्व अद्वितीय है। महाभारत में स्पष्ट उक्ति है कि गुरु का स्थान सैकड़ों माताओं से बढ़कर है। वन पर्व में यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किये - कौन सी वस्तु पृथ्वी से भी भारी है? उत्तर मिला - 'माता'। कौन आसमान से भी ऊँचा है? - 'पिता'। कौन माता-पिता से भी बढ़कर है? - 'गुरु'। क्योंकि माता-पिता तो शरीर प्रदान करते हैं पर गुरु तो बुद्धि, प्रज्ञा प्रदान करनेवाला है। वह मनुष्य को मनुष्य बनाता है, उसे मानवीय गुण, विवेक और बुद्धि प्रदान करता है।

हमारे यहाँ दो परम्पराओं के कारण गुरु का महत्व हमेशा रहा है। प्रथम, हमारे यहाँ ज्ञान प्राप्त करने की मौखिक परम्परा रही है, पुस्तकों से ज्ञान नहीं प्राप्त किया जाता, बल्कि सीधे गुरु से प्राप्त किया जाता है। दूसरे व्याकरण तथा सही उच्चारण पर सदैव बल दिया गया। गुरु मात्र ज्ञान नहीं प्रदान करता वरन् चरित्र का भी निर्माण करता है वह केवल शिक्षा नहीं देता, पढ़ना ही नहीं सिखाता बल्कि जीना सिखाता है। पूर्ण व्यक्तित्व का विकास ही हमारे यहाँ गुरुकुलों का लक्ष्य रहा है। गुरु के आदर्श व्यक्तित्व से शिष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। गुरु के महत्त्व को सभी ने स्वीकार किया है। संत कबीर ने तो यहाँ तक कहा है कि 'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय, बलिहारि गुरुदेव की, जिन गोविन्द दियो बताय।' इसका अर्थ है हमें गोविंद, ईश्वर तक पहुँचाने वाला गुरु ही तो है इसलिये वह गोविंद से भी बढ़कर है।

'गुरु बिन होय न ज्ञान' ऐसा कहा गया है। गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि गुरु स्वयं ज्ञानस्वरुप है। हर एक को गुरु की आवश्यकता है, चाहे वह श्रीराम हों, ईसामसीह हों या स्वामी विवेकानन्द। व्यक्तित्व का पूर्ण विकास बिना गुरु के सही निर्देशन के नहीं हो सकता। इसलिये गुरु के पास तो जाना ही होगा। हर एक के अन्दर पूर्णता प्राप्त करने की शक्ति है, प्रतिभा है, क्षमता है। गुरु का काम इस सोई हुई शक्ति को जागृत करना है, हमारी प्रतिभा को सही दिशा में विकसित करना है। गुरु के दिखाए मार्ग पर चलें, उनका

विश्वास व स्नेह जीतें। हम स्वयं गुरु से भी अधिक प्रबुद्ध होने की क्षमता रखते हैं। हम सभी दीये की तरह हैं जिसमें तेल है, पर जलाने के लिये जलता हुआ दीपक चाहिये। गुरु ऐसा ही प्रज्ज्वलित दीपक है जो सबको जलाने की शक्ति रखता है।

आज हम ज्ञान की प्राप्ति अकेले नहीं कर सकते। आज ज्ञान का अपार भण्डार मौजूद है। सैकड़ों ज्ञानियों का योगदान उसमें रहा है। हम इस असीम ज्ञान को कुछ वर्षों में प्राप्त कर लेते हैं। यही है ऋषि ऋण, जिसे हम तभी चुका सकते हैं, जब हम भी इस ज्ञान के खजाने को बढ़ाने में सहयोग करें।

गुरु स्तोत्र :

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्षितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।१।।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं जड़ चेतनमय सृष्टि जिस तत्व (ईश्वर) से व्याप्त है उसके (ईश्वरतत्व) दर्शन कराने वाले श्री सद्गुरु को नमस्कार।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।२।।

अज्ञानरुपी अन्धकार से आच्छादित हमारे नेत्रों को (हमारे विवेक को) ज्ञानरुपी काजल की शलाका (तीली) से खोलने वाले गुरु को नमस्कार।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव पर ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।३।।

गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महेश्वर हैं! गुरु ही परब्रह्म (साक्षात् ईश्वर) हैं, उस गुरु को नमस्कार।

स्थावरं जङ्गमं व्याप्तं यत्किञ्चित् सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।४।।

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिस ईश्वरीय शक्ति से व्याप्त है, उस शक्ति का, उस तत्व का बोध कराने वाले श्री गुरु को हमारा प्रणाम्।

चिन्मयं व्यापियत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।५।।

वस्तुतः यह नाम रुपमय चराचर जगत् चैतन्यतत्व से ही व्याप्त है। तीनों अवस्थाएँ जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति इनका भी भान चैतन्य स्वरुप की उपस्थिति से ही सम्भव है, उस चैतन्य तत्व का ज्ञान कराने वाले श्री गुरु को हमारा प्रणाम्।

सर्वश्रुतिशिरोरत्न विराजितपदाम्बुजः ।
वेदान्ताम्बुज सूर्यो यः तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।६।।

समस्त श्रुतियों, पुराणों व शास्त्रों का ज्ञान जिनके चरण कमलों में विराजमान् है, जिन्होंने वेदान्त दर्शन जैसे अद्‌भुत ज्ञानरुपी कमल को विकसित करने में सूर्य की भूमिका निभाई है, ऐसे सूर्य के समान तेजस्वी श्री गुरु को हमारा प्रणाम्।

चैतन्यः शाश्वतः शान्तो व्योमातीतो निरञ्जनः ।
बिन्दुनादकलातीतः तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।७।।

वह जो चैतन्यस्वरुप है, शाश्वत है, शान्त है, आकाश एवं अन्तरिक्ष से परे है, जो अत्यन्त शुद्ध है, जो बिन्दु, नाद और कला से परे है उस श्री गुरु को हमारा प्रणाम्। अभिप्राय यह है कि जो अन्तरतम में है, जो बाह्य नामरुप की उपाधियों से परे है, उसे हमारा प्रणाम् है।

ज्ञानशक्तिसमारुढः तत्वमालाविभूषितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदाता च तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।८।।

ज्ञानरुपी शक्ति से सम्पन्न, तत्वज्ञान रूपी (ईश्वरीय ज्ञान) माला से सुशोभित, भौतिक समृद्धि व मुक्ति (मोक्ष) दोनों ही प्रदान करनेवाले श्री गुरु को हमारा प्रणाम्।

अनेकजन्मसम्प्राप्त कर्मबन्धविदाहिने ।
आत्मज्ञानप्रदानेन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।९।।

अनेक जन्मों से प्राप्त कर्मबन्धन को, आत्मज्ञान प्रदान कर दग्ध करने वाले (जला देने वाले) श्री गुरु को मेरा प्रणाम्, अर्थात् आत्मज्ञान अथवा तत्वज्ञान से कर्मबन्धनों से मुक्त कर आनन्द की स्थिति तक पहुँचाने वाले सद्‌गुरु को प्रणाम्।

शोषणं भवसिन्धो च ज्ञापनं सारसम्पदः ।
गुरोः पादोदकं सम्यक् तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।१०।।

ऐसे सद्गुरु, जिनके चरणों का अमृत (चरणामृत) अज्ञानता के संसार सागर (भवसिन्धु) को सुखाकर, सम्पत्ति एवं समृध्दि के सार तत्व आनन्द, परमानन्द को प्राप्त कराता है, उसे हमारा प्रणाम्।

न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः ।
तत्वज्ञानात् परं नास्ति तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।११।।

वास्तव में गुरु से बढ़कर संसार में कोई तत्व नहीं है, न ही गुरु सेवा, गुरु श्रद्धा, गुरु प्रेम से बढ़कर कोई तपस्या है, गुरु ही तत्वज्ञान कराता है और तत्वज्ञान से बढ़कर संसार में कुछ और नहीं है, उस गुरु को हमारा प्रणाम्।

मन्नाथः श्रीजगन्नाथः मद्गुरुः श्रीजगद्गुरु ।
मदात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।१२।।

गुरु, मात्र एक शरीरधारी नहीं है, अपितु गुरु तो जग का स्वामी है जो सारे संसार का गुरु है, जो मुझमें तथा समस्त प्राणियों में आत्मतत्व के रुप में स्थित है, वही मेरा गुरु हैं। उस श्री गुरु को हमारा प्रणाम्।

गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम् ।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्रीगुरुवे नमः ।।१३।।

गुरु आदि है, वह अनादि है, वह सर्वश्रेष्ठ है, उससे परे कुछ नहीं है, उस सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान श्रीगुरु को मेरा प्रणाम्।

महर्षि पतञ्जलि : लोकमंगलकारी व्यक्तित्व एवं कृतित्व

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतंजलिं प्रांजलिरानतोऽस्मि ।।

योग शास्त्र से चित्त, पदशास्त्र - व्याकरण (महाभाष्य) से वाणी एवं वैद्यकशास्त्र (चरक संहिता) से शरीर के मल को दूर कर उन्हें निर्मल बनाने वाले मुनियों में श्रेष्ठ पतञ्जलि को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

उक्त कथन महर्षि पतञ्जलि के व्यापक लोकमंगलकारी व्यदितत्व एवं कृतित्व को उजागर करता है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में पतञ्जलि का अप्रतिम स्थान है। उनका नाम पतञ्जलि कदाचित् इसलिये पड़ा कि जिस किसी मार्ग से वे निकलते थे, उन्हें देखकर सभी लोग हाथ जोड़कर श्रद्धावनत खड़े हो जाते थे।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में ईसा पूर्व की शताब्दियों में पतञ्जलि एक ऐसा नाम है, जिसका समय पूर्णतः प्रमाणित और मान्य है। महाभाष्यकार पतञ्जलि असंदिग्ध रुप से सम्राट् पुष्यमित्र शुंग के समय में थे। महाभाष्य के निश्चित साक्ष्य के आधार पर विजयोपरान्त पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ के समय पतञ्जलि ने पुरोहित का पद सुशोभित किया था। ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में यह घटना घटित हुई थी।

महर्षि पतञ्जलि के दर्शन की प्रासंगिकता :

जहाँ एक ओर मानवजाति इस वैज्ञानिक एवं बौद्धिक युग में अनन्त भौतिक उपलब्धियों से गर्वित है, वहीं दूसरी ओर वह नाना प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त होकर भविष्य के प्रति सशंकित और भयाक्रान्त भी हैं। स्नायविक तनाव, दवाओं का प्रचुर प्रयोग और दिन-प्रतिदिन फैलता मनोह्रास आज की नियति बन गई है। इन सबसे त्राण का सहज, अनुभूत एवं विश्वस्त उपाय है - **"योगस् या योग"**।

योग एक पूर्ण विज्ञान है, एक पूर्ण जीवन शैली है। इसकी लोकप्रियता का रहस्य यह है कि यह लिंग जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, क्षेत्र एवं भाषा की सीमाओं में बद्ध नहीं है। साधक, चिंतक, वैरागी, अभ्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ कोई भी इसका सान्निध्य प्राप्त कर इससे लाभान्वित हो सकता है। व्यक्ति के निर्माण और उत्थान में ही नहीं बल्कि परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के चहुँमुखी विकास में भी यह उपयोगी सिद्ध हुआ है। आधुनिक मानव समाज जिस तनाव, अशांति, आतंकवाद, अभाव एवं अज्ञान का शिकार है, उसका समाधान केवल योग है। योग मनुष्य को सकारात्मक चिंतन की ओर ले जाता है। महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के रूप में इसे सम्पादित किया है।

योग केवल कन्दराओं में जीवन जीने वाले वैरागियों, तपस्वियों एवं योगाभ्यासियों की विद्या ही नहीं है बल्कि सामान्य गृहस्थ के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह कितने आश्चर्य का विषय है कि दो सौ वर्ष पुरानी एलोपैथी चिकित्सा पद्धति में फँसकर हम अपना आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक शोषण कराने को तो सहज में तैयार हो जाते हैं लेकिन करोड़ों वर्षों से भी पुरानी योग विद्या के प्रति उदासीन रहते हैं, अनभिज्ञ रहते हैं जो एक प्रामाणिक ही नहीं वरन् निःशुल्क शिक्षा पद्धति भी है। पतंजलि द्वारा निष्पादित योग के आठ अंग हैं -

1. यम	2. नियम	3. आसन	4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार	6. धारणा	7. ध्यान	8. समाधि

शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आसन और प्राणायाम का बहुत महत्त्व है। इनके द्वारा शरीर की ग्रन्थियों व माँसपेशियों में कर्षण एवं विकषर्ण होता है रक्त को वहन करने वाली धमनियाँ एवं शिराएँ स्वस्थ हो जाती हैं। पाचन तंत्र के स्वास्थ्य पर पूरे शरीर का स्वास्थ्य निर्भर करता है। अधिकांश बीमारियों के मूल कारण पाचनतंत्र का अस्वस्थ होना है। योग से पाचनतंत्र पूर्णतया स्वस्थ बन जाता है जिससे सम्पूर्ण शरीर हल्का एवं स्फूर्तिदायक हो जाता है। महर्षि पतंजलि की योग विद्या के संवाहक के रूप में स्वामी रामदेवजी ने इसका प्रचार-प्रसार करके करोड़ों लोगों को रोगमुक्त किया है। आज आवश्यकता है विद्यालयों के स्तर पर बच्चों को इसका अभ्यास कराने की, ताकि वे अभी से ही स्वस्थ एवं रोगमुक्त हो सकें। वर्तमान समय के गतिशील युग में रोगों के कई मुख्य कारण हैं।

1. तनाव 2. चिंता 3. कुंठा
4. निराशा 5. असफलता

उपर्युक्त घटकों के कारण मानव समाज अनेक रोगों से ग्रसित हो जाता है ऐसे समय में योग का मार्ग ही सबसे सरल निदान है। विभिन्न आसनों और प्राणायाम के द्वारा शरीर हल्का हो जाता है और ध्यान-विधि से मानसिक शान्ति प्राप्त होती है इसलिए वर्तमान समय में पतंजलि दर्शन ही सबसे अधिक प्रासंगिक है। जो भी व्यक्ति जीवन में पूर्ण सुखी होना चाहता है तथा प्राणि मात्र को सुखी देखना चाहता है उन सबके लिए अष्टांग योग का पालन अनिवार्य है। यदि संसार के लोग वास्तव में इस बात को लेकर गंभीर हैं कि विश्व में शान्ति स्थापित होनी ही चाहिए तो इसका एकमात्र समाधान है अष्टांग योग का पालन। इसके द्वारा ही सामाजिक समरसता, शारीरिक स्वास्थ्य, बौद्धिक जागरण, मानसिक शान्ति एवं आत्मिक आनन्द की अनुभूति हो सकती है।

यम-नियम : व्यक्तित्व-निर्माण का आधार :

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान ये व्यक्तिगत समृद्धि के आधार हैं। यम और नियम के बिना आगे की यात्रा पूर्णरुप से सफल नहीं हो सकती। आसन-प्राणायाम के साथ यदि यम-नियम रहे, तो जीवन नये प्रकाश से स्थायी रुप से ज्योतिर्मय हो सकता है।

प्रत्याहार का अर्थ है अपनी बहिर्मुखी वृत्तियों को समेटकर अन्तर्मुखी बनाना। चित्त प्रवाह को एकाग्र कर तीव्रता से आत्मा की ओर - अपने शुद्ध स्वरुप की ओर लौटना

धारणा है, धारणा की परिपक्वावस्था ध्यान है, और ध्यान ही समाधि के शिखर पर आरोहण की पूर्वावस्था है।

'योग' का क्षेत्र व्यापक है - वह शरीर को स्वस्थ रखता है, मन को निर्मल बनाता है, पुण्यात्मा के प्रति मुदिता, सुखी के प्रति मैत्री, दुःखी के प्रति करुणा और पापी के प्रति उपेक्षा की भावना करके हमारी वृत्तियों को शुद्ध करता है, उन्नत बनाता है, जिससे हमारी बुद्धि आत्मोन्मुखी होकर ऋतंभरा प्रज्ञा बन जाती है।

'योग' व्यक्तित्व को समृद्ध करता है, योग समाज के प्रति समर्पण का भाव है, वही निष्काम कर्म-योग है, वही राजयोग है। योग सारी सिद्धियों, विभूतियों और उपलब्धियों के मध्य निर्विकार रहकर अपने स्वरुप में स्थिर होना सिखाता है। योग व्यष्टि एवं समष्टि का महामिलन है।

महर्षि पतञ्जलि ने विश्वविख्यात वैयाकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी एवं उसके विषद व्याख्याता वररूचि और कात्यायन के वार्तिकों पर महाभाष्य की रचना कर व्याकरण के इतिहास को नवीन आयाम दिये हैं। व्याकरण जैसे क्लिष्ट, शुष्क एवं दुरुह विषय को अत्यन्त सरल और मधुर बनाकर साहित्य को रसात्मक बनाया, साथ ही दर्शन की उच्चता भी प्रदान की। विषय प्रतिपादन में स्पष्टता है। इनकी पाण्डित्यपूर्ण विशिष्टता व्याख्या शैली है। विवादास्पद स्थलों पर उन्होंने पूर्वपक्ष उपस्थित करने के बाद उत्तरपक्ष उपस्थित किया है। इन्होंने पाणिनि की परम्परा को आगे बढ़ाया है।

महाभाष्यकार केवल व्याख्याकार नहीं, ये महान मनस्वी हैं, विचारक हैं, मौलिक हैं और अद्‌भुत सूझबूझ के धनी हैं। निर्भीक विचारक एवं असामान्य प्रतिभा के कारण इस ग्रन्थ का गौरव बढ़ा है और वैयाकरण पाणिनि को भगवान् पाणिनि के उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया है।

भाषा की सरलता, प्रांजलता, स्वाभाविकता एवं विषयप्रतिपादन की शैली की दृष्टि से उनका महाभाष्य समस्त संस्कृत वाङ्मय में आदर्श है। इस ग्रन्थ में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों की यथातथ्य जानकारी मिलती है।

इस ग्रन्थ का निम्नलिखित वाक्य वस्तुतः विश्व के सभी मनीषियों एवं अध्येताओं के लिये एक प्रकाश-स्तम्भ है -

''एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः ।
स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति ।।''

अच्छी तरह से जाना हुआ एवं विधि से प्रयोग किया हुआ एक ही शब्द स्वर्ग और इस लोक की सभी कामनाएँ पूर्ण करता है।

महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर : नामकरण में सन्निहित उद्देश्य :

यह स्पष्ट है कि महर्षि पतञ्जलि का जहाँ अतीत में महत्व था, आज के सन्दर्भ में वे और भी अधिक प्रासंगिक हैं, वस्तुतः अनिवार्य हो गए हैं। इस विद्यालय का नाम महर्षि के नाम से जोड़ा गया है, यह नाम हमारी भावना का उद्घोषक है। हम चाहते हैं - हमारे बच्चे पूर्ण स्वस्थ हों, मनस्वी हों, प्रखर हों, तेजस्वी हों, कर्मयोगी हों, सामाजिक चेतना-सम्पन्न हों, प्रज्ञावान् हों और वे उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न-द्रष्टा बनें।

पतंजलि के आदर्श यदि प्रारंभिक जीवन से ही छात्रों के समक्ष रहें तो वे जीवन के विविध आयामों एवं परिस्थितियों में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करने में सदैव सफल होंगे। योगशास्त्र में निरूपित यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि हमें शारीरिक रुप से स्वस्थ रखने में सहायक तो हैं ही, वे चित्त को सब ओर से हटाकर ध्येय पर केन्द्रित करने के द्वारा मानसिक क्षमताओं को प्रस्फुटित करने में भी अप्रतिम भूमिका का निर्वहन करते हैं। योगसूत्र प्रोक्त कर्म-सिद्धान्त के माध्यम से जब हम इस तथ्य से परिचित हो जाते हैं कि प्रत्येक कर्म फल अवश्य देता है, बिना फल दिये वह क्षीण नहीं होता, तो यह शास्त्र सत्कर्म प्रेरक बन जाता है। सामान्यतः सभी मानव दुःख से बचने के लिए सत्कर्मों में प्रवृत्त होना चाहते हैं, दुराचरण में नहीं।

विद्यालय का आदर्श वाक्य - 'प्रज्ञानं ब्रह्म'

'प्रज्ञानं ब्रह्म' वैदिक वाङ्मय के चार महावाक्यों में से एक है।

इसका अर्थ है - विशुद्ध ज्ञान ही ब्रह्म है।

यदि मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाय तो उसे इस सत्य का भी बोध हो जायेगा कि ब्रह्म या ईश्वर से पृथक उसका अस्तित्व नहीं है। वह भी ईश्वर के समान ही शक्तिमान, ज्ञानवान्, असीम ऊर्जा का स्रोत एवं प्रकाश का अक्षय भण्डार है।

'प्रज्ञानं ब्रह्म' के उच्चतम लक्ष्य को लेकर चलने पर हो सकता है कि हम ब्रह्म न बन सकें, किन्तु प्रज्ञानी अवश्य बनेंगे; ईश्वर भले ही न बन सकें, चैतन्य मनुष्य अवश्य ही बनेंगे।

ज्ञान का तात्पर्य है - पूर्ण मनुष्य बनना, जिसमें प्रेम, करुणा, दया, सहभागिता, सहानुभूति का भाव हो। यह ज्ञान विद्या मंदिरों से ही प्राप्त हो सकता है। 'प्रज्ञानं' का अर्थ है शुद्ध ज्ञान, पूर्ण प्रकाश, जिसमें किसी प्रकार का अन्धकार न हो।

''देश एवं काल से अविच्छिन्न होकर अहंकार से दूर केवल शुद्ध प्रकाश ही प्रज्ञान है।''

'प्रज्ञानं ब्रह्म' हमारे विद्यालय का आदर्श वाक्य है। यह हमारे गंतव्य का सूचक है। हमारा लक्ष्य है - शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति। ज्ञान प्रकाश है, यह अज्ञान रूपी अंधकार दूर करता है; ज्ञान अग्नि है, जो जड़ता को भस्म करती है; ज्ञान की तलवार से संशय विच्छिन्न होता है। ज्ञान वह नाव है जिसमें बैठकर हम भवसागर पार कर सकते हैं। छात्र-छात्राओं में ज्ञान की ज्योति जलाकर प्रखर व्यक्तित्व का निर्माण तथा भावी राष्ट्र के विकास में अभीष्ट योगदान हेतु उन्हें सम्प्रेरित करना इस विद्यालय का पुनीत लक्ष्य एवं आदर्श है।

विद्यालय के छात्र-सदन

भारतभूमि धन्य है। इसने समय-समय पर अनेक कवि-मनीषियों, सन्त-महात्माओं, वीर-योद्धाओं और लोकनायकों को जन्म दिया है। ये महापुरुष मोक्ष और निर्वाण की कामना छोड़ जीवन भर सत्य के शोध में निरत् रहकर तप और त्याग की ज्वाला में तिल-तिल कर जलते रहे जिससे कि भावी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त हो सके। हमारी धमनियों में आज भी उन्हीं महापुरुषों का रक्त प्रवाहित हो रहा है, हमारी वाणी में उन्हीं का सत्य बोल रहा है, हमारे संकल्पों में उन्हीं की तपस्या मूर्त हो रही है। हम पर उन महापुरुषों का बहुत बड़ा ऋण है, जिसे हम इसी रूप में चुका सकते हैं कि उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण करें और उनके पद-चिन्हों पर चलकर कुन्दन-सा शुद्ध, कमल-सा निर्मल और सूर्य के समान तेजस्वी बनने का संकल्प पूरा करें।

इस विद्या मंदिर में छात्र-छात्राओं में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के विकास हेतु उन्हें पाँच महापुरुषों के नामों से संबोधित - वाल्मीकि हाउस (सदन), विश्वामित्र हाउस, वशिष्ठ हाउस, व्यास हाउस तथा विवेकानन्द हाउस - पाँच सदनों में विभाजित किया जाता है। विद्यार्थियों के समूहों को इन्ही विशिष्ट ऋषियों के नामों से क्यों जोड़ा गया है। यह एक विचारणीय बिन्दु है। अतः यहाँ पर इन ऋषियों का संक्षिप्त परिचय देना समीचीन प्रतीत होता है।

महर्षि वाल्मीकि - महर्षि वाल्मीकि ने न केवल आदि कवि होने का गौरव प्राप्त किया, अपितु वे भारतीय ऋषियों में अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित हुए। उनके बारे में तुलसीदास जी ने लिखा है -

उलटा नाम जपत जग जाना ।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ।।

यह कथन मानव को उन्नति की ओर अग्रसर होने के लिए कष्टसहन और साधना हेतु संप्रेरित करता है। महर्षि वाल्मीकि का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके बचपन का नाम अग्नि शर्मा था। इनके पिता ने अपने पुत्र को अध्ययन एवं उत्तम संस्कारों के लिए एक मुनि के आश्रम में भेज दिया। किन्तु आश्रम का शान्त वातावरण बालक को रास नहीं आया। एक बार गाय चराते हुए ये जंगल की ओर चले गये, जहाँ उनकी भेंट बाल डाकुओं से हुई, जिन्हें डाका डालने की शिक्षा मिलती थी। डाकुओं के सरदार के बहकावे में आकर अग्नि शर्मा बिना किसी से कुछ कहे डाकुओं के गिरोह में सम्मिलित हो गये और आगे चलकर रत्नाकर डाकू के नाम से प्रसिद्ध हुए।

एक बार सप्तर्षि उसी वनमार्ग से जा रहे थे; रत्नाकर ने उन्हें पकड़ लिया और धन की मांग करने लगा। ऋषियों को उस युवक के कुकृत्य पर क्षोभ हुआ और उन्होंने पूछा - "जो पापकर्म करके परिवार का पालन-पोषण कर रहे हो, क्या उस पाप के फल में तुम्हारे परिवार के लोग भी भागीदार होंगे?" ऋषियों के इस प्रश्न से हतप्रभ रत्नाकर उन्हें पेड़ों से बाँधकर अपने घर गया और अपनी पत्नी तथा बच्चों से वही प्रश्न पूछा। उन्होंने कहा, "हमारा पालन-पोषण करना आपका धर्म है। आप कैसे कमाते हैं और इसमें क्या दोष लगता है, हमें इससे कोई मतलब नहीं।" इस घटना से रत्नाकर अत्यन्त क्षुब्ध हुआ। उसने सप्तर्षियों से क्षमा याचना की और उद्धार का मार्ग पूछा। राम-नाम का जप करने का उपदेश देकर ऋषिगण चले गये। रत्नाकर उसी नाम का अखण्ड जप करने लगा। यद्यपि वह राम न कहकर 'मरा, मरा' कहता रहा, क्योंकि उसने जीवन भर यही किया था - उसने किसी एक को मारा और फिर दूसरे को। वह तपस्या में इतना लीन हो गया कि उसके शरीर पर दीमकों की बाँबी बन गई। 13 वर्ष बाद उन्हीं सप्तऋर्षियों ने पुनः उसे आशीर्वाद दिया और उसका नाम वाल्मीकि रखा। वाल्मीकि ने इतनी कठिन साधना की कि वे आगे चलकर महर्षि वाल्मीकि के नाम से सुविख्यात हुए।

कहा जाता है कि एक बार तमसा नदी के तट पर पति की मृत्यु से चीत्कार करती क्रौंची को देखकर वाल्मीकि का हृदय करुणा से भर उठा और उनके मुख से सहसा यह श्लोक निःसृत हुआ -

''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।''

उक्त श्लोक को काव्य जगत् की प्रथम रचना के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसीलिए महर्षि बाल्मीकि को आदिकवि के नाम संबोधित किया जाता है।

महर्षि बाल्मीकि ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र को आधार मानकर संस्कृत में रामायण की रचना की, जिसे बहुत प्रसिद्धि मिली। वाल्मीकि के आश्रम में ही सीता ने लव-कुश को जन्म दिया। इन बालकों की सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा भी महर्षि द्वारा हुई।

हरियाली, प्रेम व खुशहाली का संदेश देने वाले इस ऋषि के नाम पर हमारे विद्यालय का एक छात्र-समूह वाल्मीकि हाऊस कहलाता है। इस हाऊस के छात्रों की क्रीड़ा शर्ट का रंग हरा रखा गया है। इसीलिए इस छात्र-समूह को छात्र-छात्राएँ बड़े प्यार से 'ग्रीन-हाऊस' कहते हैं।

महर्षि विश्वामित्र :

भारतीय इतिहास की महान् विभूतियों में महर्षि विश्वामित्र का नाम अग्रगण्य है। विश्वामित्र एक सम्राट् थे। क्षत्रिय होते हुए भी उन्होंने कठिन तपस्या की और ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया।

वे मुनि वशिष्ठ एवं भारद्वाज ऋषि के समकालीन थे। उनका जन्म एक कान्यकुब्ज परिवार में हुआ था। जन्म का नाम विश्वरथ था। आगे चलकर क्षत्रिय से ब्राह्मणत्व प्राप्त करने पर उन्हें विश्वामित्र कहा जाने लगा। सुदास नामक राजा के पुरोहित ऋषि वशिष्ठ थे। एक बार सुदास ने अपना पौरोहित्य विश्वामित्र को दे दिया। राजा के इस व्यवहार से ऋषि वशिष्ठ बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और तब से वशिष्ठ और विश्वामित्र के बीच संघर्ष प्रारम्भ हुआ।

वशिष्ठ के आश्रम में नन्दिनी नामक गाय थी, जो कामधेनु की पुत्री थी तथा सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ थी। एक बार वशिष्ठ के आग्रह पर जब विश्वामित्र ने उनका आतिथ्य स्वीकार किया, तब उनसे नन्दिनी की माँग की। उसे न देने पर उन्होंने

उन पर आक्रमण कर दिया और स्वयं पराजित हुए। एक बनवासी ऋषि में इतना सामर्थ्य देखकर विश्वामित्र ने निश्चय किया कि वे भी तप करके शक्ति अर्जित करेंगे। हिमालय की ओर जाकर उन्होंने कठोर तप किया और वरदानस्वरूप ईश्वर से युद्ध के सभी रहस्य एवं सभी मन्त्र प्राप्त किए और एक बार फिर वशिष्ठ पर आक्रमण किया। पर वशिष्ठ के योगदण्ड के सामने उनके सौ शस्त्र मन्त्रों का भी प्रभाव जाता रहा। अन्ततः ब्रह्म तेज के आगे क्षात्रतेज की दुर्बलता को उन्होंने स्वीकार किया और स्वयं भी कठोर तपस्या करके ब्रह्मा जी द्वारा वरदान पाकर राजर्षि बने। किन्तु वे ब्रह्मर्षि बनना चाहते थे, अतः फिर से तप में लीन हो गए। अन्ततः समस्त देवताओं ने और फिर ऋषि वशिष्ठ ने उन्हें ब्रह्मर्षि का गौरव पद प्रदान किया। ज्ञातव्य है कि विश्वामित्र ने ही राजा हरिश्चन्द्र की कठोर परीक्षा ली थी और उनके यश को फैलाने में सहायक सिद्ध हुए।

विश्वामित्र असाधारण साहस और अलौकिक सामर्थ्य के धनी थे। महर्षि विश्वामित्र के नाम पर विद्यालय के एक छात्र समूह का नाम 'विश्वामित्र हाऊस' तथा उनके तप और तेज को प्रकट करने वाले रंग - लाल रंग - 'रेड हाऊस' से सम्बोधित किया जाता है।

महर्षि वशिष्ठ :

योगी, तपस्वी, मनस्वी एवं ज्ञानियों में अग्रगण्य ऋषि वशिष्ठ का भारतीय इतिहास में अत्यन्त गौरवशाली स्थान है। वशिष्ठ महाराज दशरथ के कुलगुरु थे। वे अत्यन्त शान्त और विनम्र स्वभाव के थे। इसी कारण ऋषि विश्वामित्र के उत्तेजित होने पर भी, उन्होंने सदैव धैर्य व संयम का परिचय दिया और अपने तप-बल से उनके अहंकार और दर्प को विदीर्ण किया। मन ही मन महामुनि वशिष्ठ के आचार-विचारों का अनुगमन कर सम्राट् विश्वामित्र अन्ततः ब्रह्मर्षि विश्वामित्र बने।

ऋषि वशिष्ठ गृहस्थ साधु थे। उनकी पत्नी का नाम अरुन्धती था। एक बार विश्वामित्र वशिष्ठ की हत्या के उद्देश्य से उनके आश्रम गये। जब वे आश्रम के निकट पहुँचे ही थे कि उसी समय चाँदनी का सुन्दर प्रकाश फैला देखकर अरुन्धती ने वशिष्ठ से कहा, "कितना सुन्दर चाँदनी का प्रकाश है!" वशिष्ठ ने कहा, "लगता है कि विश्वामित्र की तपस्या ही चाँदनी के रूप में उतर आयी है।" ऋषि वशिष्ठ द्वारा परोक्ष में अपनी प्रशंसा सुनकर विश्वामित्र लज्जित हो उठे और वे जाकर उनके चरणों मे गिर पड़े।

धन्य हैं महामुनि वशिष्ठ! अपनी इसी उदारता, ज्ञान, तपोबल एवं विनम्र स्वभाव के कारण वे सदैव अमर हैं। इन्हीं महर्षि वशिष्ठ की पुण्य स्मृति में इस विद्यालय का एक छात्र-समूह अपने पीतध्वज के साथ 'वशिष्ठ हाऊस' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

भगवान् वेदव्यास :

यद्यपि व्यास किसी एक व्यक्ति का नाम नहीं अपितु यह एक उपाधि है। किन्तु द्वापर के कृष्ण द्वैपायन ऋषि व्यास के नाम से सुविख्यात हुए; कृष्ण क्योंकि इनका रंग श्याम था और द्वैपायन इसलिए कि उनका जन्म यमुना के एक द्वीप पर हुआ था।

वे वेद, शास्त्र, पुराण, काव्य, इतिहास आदि सभी क्षेत्रों में पारंगत थे। उनके पिता ऋषि पराशर एवं माता सत्यवती थीं। हस्तिनापुर में जब राजवंश समाप्त हो रहा था तो उन्हीं की कृपा से अंबिका को धृतराष्ट्र, अम्बालिका को पाण्डु तथा राजमहल की एक दासी को विदुर नामक पुत्रों की प्राप्ति हुई। महाभारत के युद्ध के वे प्रत्यक्षदर्शी थे। ब्रह्मा जी के कहने पर उन्होंने सम्पूर्ण महाभारत की कथा को भगवान् गणेश की सहायता से लिपिबद्ध किया।

व्यास जी ने ही वेदों को चार भागों में विभाजित किया। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद। उनके पटशिष्य वैशम्पायन, पैल, जैमिनी एवं सुमन्तु नामक चार महर्षियों ने भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाकर वेदज्ञान को लोगों तक पहुँचाया। व्यास जी ने वेदों का अर्थ समझाने के लिए वेद सूत्रों की रचना की और इन सूत्रों को स्पष्ट करने के लिए अठारह पुराणों की रचना की। इन पुराणों में महान विभूतियों के विषय में तथा नीति-प्रधान कथाएँ भी लिखीं। महाभारत पंचम वेद कहलाता है। जिस भगवद्गीता की आज संसार के श्रेष्ठ ग्रन्थों में गणना की जाती है, वह इसी का एक अंश है। अपने जीवन के अंतिम काल में उन्होंने श्री कृष्ण-चरित्र के रूप में श्रीमद्भागवत ग्रन्थ की रचना की।

उनका जीवन अग्नि की भाँति ज्योतिर्मय एवं पवित्र था। वे उदात्त ज्ञान के अगाध सागर थे। उनकी पुण्य स्मृति में विद्यालय के एक छात्र-समूह को 'व्यास-हाऊस' के नाम से संबोधित किया जाता है। ज्ञान की अनन्तता के प्रतीक स्वरूप इस हाऊस का ध्वज नीला है। सभी छात्र नीले रंग की क्रीडा-बनियाइन भी धारण करते हैं। इसीलिए इसे 'ब्लू हाऊस' के नाम से भी संबोधित किया जाता है।

स्वामी विवेकानन्द :

स्वाभिमान और निर्भयता के अमर प्रतीक स्वामी विवेकानन्द ने निराशा के घोर अन्धकार को चीरकर भारतीय जनमानस में आत्मविश्वास की ज्योति जगाई और देश-देशान्तरों में भारत की आध्यात्मिक श्रेष्ठता का ध्वजारोहण किया।

स्वामी विवेकानन्द के बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनका जन्म 12 जनवरी, 1863 ई० को कलकत्ता में हुआ था। उनके पिता विश्वनाथदत्त पश्चिम से आए बुद्धिवाद के पुजारी थे, पर उनकी माता धर्मपरायण एवं सनातनी विचारों की हिन्दू महिला थीं। बालक नरेन्द्र के व्यक्तित्व में माता-पिता की श्रेष्ठता का समाहार हुआ। पिता से उन्होंने बौद्धिकता अर्जित की और माता से धर्मपरायणता। मन की आध्यात्मिक शंकाओं को दूर करने के लिए उन्होंने अनेक धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया और अनेक विद्वानों और साधुओं के सम्मुख अपनी ईश्वर विषयक जिज्ञासा को रखा, पर कोई भी उनका संतोषपूर्ण समाधान न कर सका। इसी ज्ञान पिपासा ने एक दिन उन्हें रामकृष्ण परमहंस के समक्ष ला खड़ा किया। परम ज्ञानी परमहंस जी उन्हें देखते ही समझ गए कि नरेन्द्र की बौद्धिकता को संतुष्ट कर सकना कोई साधारण बात नहीं है। एक दिन नरेन्द्र ने पूछ ही लिया, "क्या आपने ईश्वर को देखा है?" परमहंस ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "हाँ, उतना ही स्पष्ट जितना कि तुम्हें देख रहा हूँ।" इतना स्पष्ट उत्तर सुनकर नरेन्द्र विस्मय में डूब गये, अब उन्हें सन्तोष हो गया और उन्होंने रामकृष्ण परमहंस को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। मृत्यु से पूर्व परमहंस ने जन्म-जन्मान्तर की साधना से प्राप्त अपनी समस्त सिद्धियों को विवेकानन्द को सौंप दिया और गुरुकृपा से विवेकानन्द आध्यात्मिक सम्पत्ति के सहज स्वामी बन गये।

दो वर्ष योग साधना के पश्चात् उन्होंने भारत की जनता को कर्मयोग का उपदेश दिया। उनकी वाणी में ऐसा चुम्बकीय आकर्षण था कि लोग सहज ही उनकी ओर खिंचे चले आते थे - शिकागो का सर्वधर्म सम्मेलन इसका एक ज्वलन्त प्रमाण है। उस धर्म सम्मेलन में उन्होंने चन्द वाक्यों से ही हिन्दू धर्म की धाक जमा दी। उनके जैसा प्रभावशाली वक्ता कोई था ही नहीं। इसीलिए अमेरिकावासियों ने उनका नाम 'तूफानी हिन्दू' रखा। वे सदैव सामाजिक विकृतियों को दूर करने पर बल देते, किन्तु समाज सुधार के लिए उन का दृष्टिकोण खण्डन का कभी नही रहा, वे प्रेम द्वारा व्यक्ति के सद्गुणों को विकसित करने के पक्षधर थे। त्याग और तपस्या पर उन्होंने विशेष बल दिया। सभी विषमताओं को दूर कर देश को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। अपने इस कार्य को स्थाई बनाने और उसे

व्यवस्थित रुप देने के लिये उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और भारत में ही नहीं, अमेरिका और इंग्लैंड मे भी उसकी शाखाएँ खोलीं। यह संस्था उनके तप, त्याग और सेवा का प्रतीक है। आज भी यह संस्था उसी प्रकार सेवा भाव से मानव-जाति के आध्यात्मिक उत्थान हेतु सतत् प्रयत्नशील है।

अपने तप और त्याग के बल पर स्वामी जी ने समूचे राष्ट्र को मोहनिद्रा से जगाकर उनके अन्तस् से हीनभावना को मिटाकर उनमें आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का मन्त्र फूंका। यही नहीं, अज्ञानान्धकार को चीरकर उसमें अध्यात्म की ज्योति जगाने और सत्य मार्ग में प्रवृत्त करने का श्रेय भी स्वामी विवेकानन्द को जाता है। वे कहते थे - कोमलता ने हमें इस सीमा तक पहुँचा दिया है कि हम रुई की माला बन गये हैं। हमारे देश और जाति को जिसकी जरूरत है वह है लोहे का हाथ और पैर व फौलाद के सारे पुट्ठे तथा वह दृढ़ संकल्प शक्ति जिसका अवरोध संसार की कोई शक्ति न कर सके। 4 जुलाई, 1902 को मात्र 39 वर्ष की आयु में अपनी इहलीला समाप्त कर यह दिव्यज्योति अनन्त में विलीन हो गई।

विद्यालय का एक छात्र-सदन 'विवेकानन्द हाऊस' के नाम से संबोधित किया जाता है। इसके छात्र-छात्राओं की टी-शर्ट का रंग गेरुआ है, इसीलिए यह 'सैफ्रन हाऊस' के नाम से विख्यात है।

इन महान ऋषियों, तपस्वियों की अनन्तता, महानता, उदारता, त्याग, प्रेम, तपस्या का अंश मात्र भी यदि विद्यालय के छात्र-छात्राओं के मन-मस्तिष्क में समा जाए, तो वे न केवल अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होंगे अपितु विश्रृंखलित होते समाज को सुदृढ़ता प्रदान करते हुए एक आदर्श नागरिक का कर्तव्य निर्वहन करने में भी पूर्ण समर्थ सिद्ध होंगे - यही पावन लक्ष्य है, इन छात्र-सदनों का नामकरण ऋषियों के नाम के साथ जोड़ने का।

दशावतार का प्रयोजन

हमारे प्राचीन ग्रंथों में भगवान के दस अवतारों की कथा अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस भौतिकवादी युग में जहाँ विज्ञान और तकनीक ज्ञान अपने चरमोत्कर्ष पर है वहीं बच्चों की धर्म विषयक शक्ति की ओर उनका ध्यान आकर्षित करने हेतु सरल कथाओं के माध्यम से भगवान के दशावतार की कथाओं को सम्मिलित करना उपयुक्त लगा। इसी उद्देश्य से हमने इस कथा का चयन किया है। उसकी भाषा अत्यन्त सरल तथा

रोचक है इसलिए उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया है। भगवान कृष्ण द्वारा गीता में दिए गए इस आश्वासन से कि "जब-जब धर्म की हानि होती है, अधर्म एवं अत्याचार बढ़ता है तब-तब धर्म की स्थापना के लिए मैं अवतार धारण करूँगा" हम सबके विश्वास को पुष्ट करता है।

दशावतार

मत्स्यावतार

प्राचीन काल में सत्यव्रत नाम के एक राजा थे। वे बड़े ही उदार और भगवान् के परम भक्त थे। एक दिन वे कृतमाला नदी में तर्पण कर रहे थे उसी समय उनकी अञ्जलि में एक छोटी-सी मछली आ गयी। उसने अपनी रक्षा की पुकार की। उस मछली की बात सुनकर राजा उसे कमण्डलु में अपने आश्रम पर ले आये। कमण्डलु में वह इतनी बढ़ गयी कि पुनः उसे एक बड़े मटके में रखना पड़ा। थोड़ी देर बाद वह उससे भी बड़ी हो गयी और मटका छोटा पड़ने लगा। अन्त में राजा सत्यव्रत हार मानकर उस मछली को समुद्र में छोड़ने गये। समुद्र में डालते समय मत्स्य ने राजा से कहा- 'राजन् ! समुद्र में बड़े-बड़े मगर आदि रहते हैं। वे मुझे खा जायेंगे। इसलिये मुझे समुद्र में न छोड़े।' मछली की यह मधुर वाणी सुनकर राजा मोहित हो गये। उन्हें मत्स्य-भगवान् की लीला समझते देर न लगी। वे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे।

मत्स्य भगवान् ने अपने प्यारे भक्त सत्यव्रत से कहा- 'सत्यव्रत! आज से सातवें दिन तीनों लोक प्रलयकाल की जलराशि में डूबने लगेंगे। उस समय मेरी प्रेरणा से तुम्हारे पास एक बहुत बड़ी नौका आयेगी। तुम सभी जीवों, पौधों और अन्नादि के बीजों को लेकर सप्तर्षियों के साथ उस पर बैठकर विचरण करना। जब तेज आँधी चलने के कारण नाव डगमगाने लगेगी तब मैं इसी रूप में आकर तुम लोगों की रक्षा करूँगा।' भगवान् राजा से इतना कहकर अन्तर्धान हो गये।

अन्त में वह समय आ पहुँचा। राजा सत्यव्रत के देखते-ही-देखते सारी पृथ्वी पानी में डूबने लगी। राजा ने भगवान् की बात याद की। उन्होंने देखा कि नाव भी आ गयी है। वे बीजों को लेकर सप्तर्षियों के साथ तुरन्त नाव पर सवार हो गये।

सप्तर्षियों की आज्ञा से राजा ने भगवान् का ध्यान किया। उसी समय उस महान् समुद्र में मत्स्य के रूप में भगवान् प्रकट हुए। तत्पश्चात् भगवान् ने प्रलय के समुद्र में विहार करते हुए सत्यव्रत को ज्ञान-भक्ति का उपदेश दिया।

हयग्रीव नाम का एक राक्षस था। वह ब्रह्मा के मुख से निकले हुए वेदों को चुराकर पाताल में छिपा हुआ था। भगवान् मत्स्य ने हयग्रीव को मारकर वेदों का भी उद्धार किया।

समस्त जगत् के परम कारण मत्स्य भगवान् को हम सब नमस्कार करते हैं।

कच्छपावतार

पुराने समय की बात है- देवताओं और राक्षसों में आपसी मतभेद के कारण शत्रुता बढ़ गयी। आये दिन दोनों पक्षों में लड़ाई होती रहती थी। एक दिन राक्षसों के आक्रमण से सभी देवता भयभीत हो गये। वे भागते-भागते ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी की राय से सभी लोग जगद्गुरु की शरण में जाकर प्रार्थना करने लगे। देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा- 'देवताओं! तुम लोग दानवराज बलि से प्रेमपूर्वक मिलो। उनको ही अपना नेता मानकर समुद्र-मथने की तैयारी करो। समुद्र-मन्थन के अन्त में अमृत निकलेगा। उसे पीकर तुम लोग अमर हो जाओगे।' यह कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

इसके बाद देवताओं ने बलि को नेता मानकर वासुकि नाग को रस्सी और मन्दराचल को मथानी बनाकर समुद्र-मन्थन शुरू किया। परन्तु जैसे ही मन्थन शुरू हुआ कि मन्दराचल ही समुद्र में डूबने लगा। सभी लोग परेशान हो गये। अन्त में निराश होकर लोगों ने भगवान् का सहारा लिया। भगवान् तो सब जानते ही थे। उन्होंने हँसकर कहा- 'सब कार्यों के प्रारम्भ में गणेश जी की पूजा करनी चाहिये। बिना उनकी पूजा के कार्य सिद्ध नहीं होता।' यह सुनकर वे लोग गणेशजी की पूजा करने लगे। उधर गणेश जी की पूजा हो रही थी, इधर लीलाधारी भगवान् ने कच्छपरूप धारणकर मन्दराचल को अपनी पीठ पर उठा लिया।

तत्पश्चात् समुद्र-मन्थन शुरू हुआ। मथते-मथते बहुत देर हो गयी। अमृत न निकला। तब भगवान् ने सहस्रबाहु होकर स्वयं ही दोनों तरफ से मथना प्रारम्भ किया। उसी समय हलाहल विष निकला, जिसे पीकर भगवान् शिव नीलकण्ठ कहलाये।

इसी प्रकार कामधेनु, उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, ऐरावत हाथी, कौस्तुभमणि, कल्पवृक्ष, अप्सराएँ, भगवती लक्ष्मी, वारुणी, धनुष, चन्द्रमा, शङ्ख, धन्वन्तरि और अन्त में अमृत निकला।

अमृत के लिये देवता और दानव झगड़ने लगे। तब भगवान् ने अपनी लीला से अमृत देवताओं को ही दिया। अमृत पीकर देवता लोग अमर हो गये। वे युद्ध में विजयी हुए।

विजयी देवता बार-बार कच्छप भगवान् की स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने कहा- 'देवताओं! जो लोग भगवान् के आश्रित होकर कर्म करते हैं; वे ही देवता कहलाते हैं। उन्हें ही सच्ची सुख-शान्ति और अमृत या अमृत-तत्त्व की प्राप्ति होती है। किंतु जो अभिमान के सहारे कर्म करते हैं; उन्हें कभी भी अमृत की प्राप्ति नहीं हो सकती।' यह कहकर भगवान् कच्छप अन्तर्धान हो गये।

भक्तों के परम हितैषी कच्छप भगवान् को हम सब नमस्कार करते हैं।

वाराह-अवतार

अनन्त भगवान् ने प्रलय के जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार करने के लिये वराह-शरीर धारण किया। कहा जाता है कि एक दिन स्वयंभू मनु ने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर अपने पिता ब्रह्माजी से कहा- 'पिताजी! एकमात्र आप ही समस्त जीवों के जन्मदाता हैं। आप ही जीविका प्रदान करने वाले भी हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। हम ऐसा कौन-सा कर्म करें, जिससे आपकी सेवा कर सके? हमें सेवा करने की आज्ञा दीजिये।' मनु की बात सुनकर ब्रह्माजी ने कहा- 'पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। क्योंकि तुमने मुझसे आज्ञा माँगी है और आत्मसमर्पण किया है। पुत्रों को अपने पिता की इसी रूप में पूजा करनी चाहिये। उन्हें अपने पिता की आज्ञा का आदरपूर्वक पालन करना चाहिये। तुम धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करो। यज्ञों द्वारा श्रीहरि की आराधना करो। प्रजापालन से मेरी बड़ी सेवा होगी।' इस पर मनु ने कहा- 'पूज्यपाद! मैं आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा। किन्तु सब जीवों का निवास स्थान पृथ्वी इस समय प्रलय के जल में डूबी हुई है। मैं पृथ्वी का पालन कैसे करूँ?'

पृथ्वी का हाल सुनकर ब्रह्माजी बहुत चिन्तित हुए। वह पृथ्वी के उद्धार की बात सोच ही रहे थे कि उनकी नाक से अचानक अँगूठे के आकार का एक वराह-शिशु निकला। देखते-ही-देखते वह पर्वताकार होकर गरजने लगा। ब्रह्माजी को भगवान् की माया समझते देर न लगी। भगवान् की घुरघुराहट सुनकर वे उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी की स्तुति से वराह भगवान् प्रसन्न हुए। वे जगत्-कल्याण के लिये जल में घुस गये। थोड़ी देर बाद वे जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर लेकर रसातल से ऊपर आए। उनके मार्ग में विघ्न डालने के लिये महापराक्रमी हिरण्याक्ष ने जल के भीतर ही उन पर गदा से आक्रमण किया। इससे उनका क्रोध चक्र के समान तीक्ष्ण हो गया। उन्होंने उसे लीला से ही इस प्रकार मार डाला, जैसे सिंह हाथी को मार डालता है।

जल से बाहर निकले हुए भगवान् को देखकर ब्रह्मा आदि देवता हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे। इससे प्रसन्न होकर वराह भगवान् ने अपने खुरों से जल को रोककर उस पर पृथ्वी को स्थापित कर दिया।

पृथ्वी का उद्धार करने वाले वराह भगवान् को हम सब नमस्कार करते हैं।

नृसिंहावतार

हिरण्याक्ष के वध से उसका भाई हिरण्यकशिपु बहुत दुःखी हुआ। वह भगवान् का घोर विरोधी बन गया। उसने अजेय बनने की भावना से कठोर तप किया। उसे देवता, मनुष्य या पशु आदि से न मरने का वरदान मिला। वरदान पाकर वह अजेय हो गया।

हिरण्यकशिपु का शासन इतना कठोर था कि देव-दानव सभी उसके चरणों की वन्दना करते रहते थे। भगवान् की पूजा करने वालों को वह कठोर दण्ड देता था। उसके शासन से सब लोक और लोकपाल घबराए। जब उन्हें और कोई सहारा न मिला तब वे भगवान् की प्रार्थना करने लगे। देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर नारायण ने हिरण्यकशिपु के वध का आश्वासन दिया।

दैत्यराज का अत्याचार दिनों-दिन बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि वह अपने ही पुत्र प्रह्लाद को भगवान् का नाम लेने के कारण तरह-तरह का कष्ट देने लगा।

प्रह्लाद बचपन से ही खेल-कूद छोड़कर भगवान् के ध्यान में तन्मय हो जाया करते थे। वे भगवान् के प्रेमी भक्त थे। वे समय-समय पर असुर-बालकों को धर्म का उपदेश देते रहते थे।

असुर-बालकों को उपदेश देने की बात सुनकर हिरण्यकशिपु बहुत क्रोधित हुआ। उसने प्रह्लाद को दरबार में बुलाया। प्रह्लाद जी बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर चुपचाप दैत्यराज के सामने खड़े हो गये। उन्हें देखकर दैत्यराज ने डाँटते हुए कहा- 'मूर्ख! तू बड़ा उद्दण्ड हो गया है। तूने किसके बल-बूते पर निडर की तरह मेरी आज्ञा के विरुद्ध काम किया है?' इस पर प्रह्लाद ने कहा- 'पिताजी! ब्रह्मा से लेकर तिनके तक सब छोटे-बड़े, चर-अचर जीवों को भगवान् ने ही अपने वश में कर रखा है। वही परमेश्वर ही अपनी शक्तियों के द्वारा इस विश्व की रचना, रक्षा और संहार करते हैं। आप अपना यह आसुरभाव छोड़ दीजिये। अपने मन को सबके प्रति उदार बनाइये।'

प्रह्लाद की बात को सुनकर हिरण्यकशिपु का शरीर क्रोध के मारे थर-थर काँपने लगा। उसने प्रह्लाद से कहा- 'रे मन्दबुद्धि! तेरे बहकने की अब हद हो गयी है। यदि तेरा भगवान् हर जगह है तो बता इस खम्भे में क्यों नहीं दीखता?'

यह कहकर क्रोध से तमतमाया हुआ वह स्वयं तलवार लेकर सिंहासन से कूद पड़ा। उसने बड़े जोर से उस खम्भे को एक घूँसा मारा। उसी समय उस खम्भे के भीतर से नृसिंह भगवान् प्रकट हुए। उनका आधा शरीर सिंह का और आधा मनुष्य के रूप में था। क्षणमात्र में ही लीलाधारी नृसिंह भगवान् ने हिरण्यकशिपु की जीवन-लीला समाप्त कर दी। अपने प्रिय भक्त प्रह्लाद रक्षा की।

सर्वव्यापक नृसिंह भगवान् को हम सब नमस्कार करते हैं।

वामन-अवतार

एक समय की बात है- युद्ध में इन्द्र से हारकर दैत्यराज बलि गुरु शुक्राचार्य की शरण मे गये। शुक्राचार्य ने उनके अन्दर देवभाव जगाया।

कुछ समय बाद गुरुकृपा से बलि ने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया। प्रभु की महिमा कितनी विचित्र है कि कल का देवराज आज भिखारी हो गया। वह दर-दर भटकने लगा। अन्त में अपनी माता अदिति की शरण में गया। इन्द्र की दशा देखकर माँ का हृदय फटने लगा। अपने पुत्र के दुःख से दुःखी अदिति ने पयोव्रत का अनुष्ठान किया। व्रत के अन्तिम दिन भगवान् ने प्रकट होकर अदिति से कहा- 'देवि! चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे पुत्ररूप में जन्म लूँगा। इन्द्र का छोटा भाई बनकर उनका कल्याण करूँगा।' यह कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

आखिर वह शुभ घड़ी आ ही गयी। अदिति के गर्भ से भगवान् ने वामन के रूप में अवतार लिया। भगवान् को पुत्ररूप में पाकर अदिति की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। भगवान् को वामन ब्रह्मचारी के रूप में देखकर देवताओं और महर्षियों को बड़ा आनन्द हुआ। उन लोगों ने कश्यपजी को आगे करके भगवान् का उपनयन आदि संस्कार करवाया।

उसी समय भगवान् ने सुना कि राजा बलि भृगुकच्छ नामक स्थान पर अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। उन्होंने वहाँ के लिये यात्रा की। भगवान् वामन कमर में मूँज की मेखला और यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। बगल में मृगचर्म था। सिर पर जटा थी। इसी प्रकार बौने ब्राह्मण के वेष में अपनी माया से ब्रह्मचारी बने हुए भगवान् ने बलि के यज्ञ-मण्डप में

प्रवेश किया। उन्हें देखकर बलि का हृदय गद्‌गद हो गया। उन्होंने भगवान् को एक उत्तम आसन दिया। बलि ने नाना प्रकार से वामन की पूजा की।

उसके बाद बलि ने प्रभु से कुछ माँगने का अनुरोध किया। उन्होंने तीन पग भूमि माँगी। शुक्राचार्य प्रभु की लीला समझ रहे थे। उन्होंने दान देने से बलि को मना किया। बलि ने नहीं माना। उसने संकल्प लेने के लिये जल-पात्र उठाया। शुक्राचार्य अपने शिष्य का हित सोचकर पात्र में प्रवेश कर गये। जल गिरने का रास्ता रुक गया। भगवान् ने एक कुश उठाकर पात्र के छेद में डाल दिया। उनकी एक आँख फूट गयी।

संकल्प पूरा होते ही भगवान् वामन ने एक पग में पृथ्वी और दूसरे में स्वर्ग नाप लिया। तीसरे पग में बलि ने अपने-आपको ही सौंप दिया। बलि के इस समर्पण भाव से भगवान् प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे सुतल लोक का राज्य दे दिया। इन्द्र को स्वर्ग का स्वामी बना दिया।

कहा जाता है कि भगवान् वामन द्वारपाल के रूप में राजा बलि को और उपेन्द्र के रूप में इन्द्र को नित्य दर्शन देते हैं।

परम दयालु वामन भगवान् को हम सब नमस्कार करते हैं।

परशुरामावतार

प्राचीन काल की बात है- पृथ्वी पर हैहयवंशीय क्षत्रिय राजाओं का अत्याचार बढ़ गया था। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। गौ, ब्राह्मण और साधु असुरक्षित हो गये थे। ऐसे समय में भगवान् स्वयं परशुराम के रूप में जमदग्नि ऋषि की पत्नी रेणुका के गर्भ से अवतरित हुए।

उन दिनों हैहयवंश का राजा सहस्रबाहु अर्जुन था। वह बहुत ही अत्याचारी और क्रूर शासक था। एक बार वह जमदग्नि ऋषि के आश्रम पर आया। उसने आश्रम के पेड़-पौधों को उजाड़ दिया। जाते समय ऋषि की गाय भी लेकर चला गया। जब परशुरामजी को उसकी दुष्टता का समाचार मिला तब उन्होंने सहस्रबाहु अर्जुन को मार डाला। सहस्रबाहु के मर जाने पर उसके दस हजार लड़के डरकर भाग गये।

सहस्रबाहु अर्जुन के जो लड़के परशुरामजी से हारकर भाग गये थे, उन्हें अपने पिता के वध की याद निरन्तर बनी रहती थी। कहीं एक क्षण के लिये भी उन्हें चैन नहीं मिलता था।

एक दिन की बात है, परशुरामजी अपने भाइयों के साथ आश्रम के बाहर गये हुए थे। अनुकूल अवसर पाकर सहस्रबाहु के लड़के वहाँ आ पहुँचे। उस समय महर्षि जमदग्नि को अकेला पाकर उन पापियों ने उन्हें मार डाला। सती रेणुका सिर पीट-पीटकर जोर-जोर से रोने लगी।

परशुरामजी ने दूर से ही माता का करुण-क्रन्दन सुन लिया। वे बड़ी शीघ्रता से आश्रम पर आये। वहाँ आकर देखा कि पिताजी मार डाले गये हैं। उस समय परशुरामजी को बहुत दुःख हुआ। वे क्रोध और शोक के वेग से अत्यन्त मोहित हो गये। उन्होंने पिता का शरीर तो भाइयों को सौंप दिया और स्वयं हाथ में फरसा उठाकर क्षत्रियों का संहार कर डालने का निश्चय किया।

भगवान् ने देखा कि वर्तमान क्षत्रिय अत्याचारी हो गये हैं। इसलिये उन्होंने अपने पिता के वध को निमित्त बनाकर इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन कर दिया। भगवान् ने इस प्रकार भृगुकुल में अवतार ग्रहण करके पृथ्वी का भार बने राजाओं का बहुत बार वध किया।

तत्पश्चात् भगवान् परशुराम ने अपने पिता को जीवित कर दिया। जीवित होकर वे सप्तर्षियों के मण्डल में सातवें ऋषि हो गये। अन्त में भगवान्, यज्ञ में सारी पृथ्वी दान कर महेन्द्र पर्वत पर चले गये।

महेन्द्र पर्वत पर विराजमान भगवान् परशुरामजी को हम सब नमस्कार करते हैं।

रामावतार

बहुत पुरानी कथा है-श्रीहरि के जय-विजय नाम के दो द्वारपाल थे। वे सनकादि ब्रह्मर्षियों के शाप से घोर निशाचर कुल में पैदा हुए। उनके नाम रावण और कुम्भकर्ण थे। उनके अत्याचारों से पृथ्वी काँप उठी। वह पाप के भार को सह न सकी। अन्त में वह ब्रह्मादि देवताओं के साथ भगवान् की शरण में गयी। देवताओं की प्रार्थना से परब्रह्म परमात्मा ने अयोध्या के राजा दशरथ की रानी कौसल्या के गर्भ से राम के रूप में अवतार लिया।

भगवान् श्रीराम ने विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालने वाले सुबाहु आदि राक्षसों को मार डाला। वे सब बड़े-बड़े राक्षसों की गिनती में थे।

जनकपुर में सीताजी का स्वयंवर हो रहा था। वहाँ भगवान् शङ्कर का विशाल धनुष रखा हुआ था। श्रीराम ने उस धनुष को तोड़कर सीताजी को प्राप्त कर लिया।

राजा दशरथ की आज्ञा से श्रीराम का चौदह वर्ष का वनवास हुआ। भगवान् ने पिता की आज्ञा मानकर अपनी पत्नी के साथ वन की यात्रा की। उनके साथ छोटे भाई लक्ष्मण भी थे।

वन में पहुँचकर भगवान् ने रावण की बहिन शूर्पणखा को कुरूप कर दिया। क्योंकि उसकी बुद्धि कामवासना के कारण अशुद्ध थी। उसके पक्षपाती खर, दूषण, त्रिशिरा आदि प्रधान-प्रधान भाइयों को श्रीराम ने नष्ट कर डाला।

शूर्पणखा की दशा देखकर रावण बहुत क्रोधित हुआ। उसने भगवान् से शत्रुता ठान ली। छल से सीताजी का हरण कर लिया। श्रीराम सीताजी के वियोग में बहुत दुःखी हुए। वे अपनी प्राणप्रिया सीताजी से बिछुड़कर अपने भाई लक्ष्मण के साथ वन-वन भटकने लगे। भगवान् ने जटायु का दाह-संस्कार किया। फिर कबन्ध का संहार किया। सुग्रीव आदि वानरों से मित्रता करके बालि का वध किया।

तत्पश्चात् हनुमान्‌जी सीता की खोज में लंका गये। वहाँ सीता से मिले। उन्होंने राक्षसों को मारा और लंका को जला दिया। लौटते समय सीता से चूड़ामणि लेकर भगवान् से मिले। अन्त में श्रीराम बंदरों की सेना के साथ समुद्र-तट पर जा पहुँचे।

भगवान् श्रीराम ने बंदरों आदि की सहायता से समुद्र पर पुल बाँधा। विभीषण की सलाह से भगवान् ने नील, सुग्रीव, हनुमान् आदि प्रमुख वीरों और वानरी सेना के साथ लंका में प्रवेश किया। दोनों ओर की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। भगवान् राम विजयी हुए। शरणागत विभीषण को लंका का राजा बनाया।

उसके बाद भगवान् श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटकर राम-राज्य की स्थापना की। भगवान् ने नरलीला करके प्राणिमात्र को प्रेम, नम्रता, सदाचार और माता-पिता-गुरु के प्रति आदर भाव का सन्देश दिया।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम को हम सब नमस्कार करते हैं।

कृष्णावतार

शूरसेन नाम के एक राजा थे। शूरसेन के पुत्र वसुदेव विवाह करके अपनी पत्नी देवकी के साथ घर जाने के लिये रथ पर सवार हुए। उग्रसेन का लड़का था कंस। वह अपनी चचेरी बहिन देवकी को प्रसन्न करने के लिये स्वयं ही रथ हाँकने लगा। जिस समय कंस रथ हाँक रहा था, उस समय आकाशवाणी ने उसे सम्बोधित करके कहा-'अरे मूर्ख! जिसको तू

रथ में बैठाकर लिये जा रहा है, उसकी आठवें गर्भ की सन्तान तुझे मार डालेगी।' कंस बड़ा पापी था। आकाशवाणी सुनते ही वह देवकी को मारने के लिए तैयार हो गया। अन्त में वसुदेव ने देवकी के पुत्रों को उसे सौंपने का वचन देकर देवकी की रक्षा की।

तत्पश्चात् कंस ने देवकी और वसुदेव को कैद कर लिया। उन दोनों से जो-जो पुत्र होते गये, उन्हें वह मारता गया। किंतु भगवान् के विधान को भला कौन रोक सकता है? आखिर वह समय आ ही गया। देवकी के गर्भ से जगत् के तारनहार नारायण ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिया।

भगवान् के जन्म लेते ही योगमाया की प्रेरणा से कारागार खुल गया। वसुदेवजी बालकृष्ण को सूप में रखकर गोकुल चल दिये। रास्ते में यमुनाजी प्रभु का चरण छूने के लिये व्याकुल हो गयीं। अन्तर्यामी बाल-प्रभु यमुना के मन की बात समझ गये। उन्होंने अपने चरण-स्पर्श से यमुना की व्यथा को दूर किया। वसुदेव ने नन्दबाबा के घर जाकर अपने पुत्र को यशोदाजी के पास सुला दिया। उनकी नवजात कन्या लेकर वे कारागार में लौट आये।

बालक श्रीकृष्ण को पाकर नन्द और यशोदा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। यशोदा को पुत्र हुआ है, यह सुनते ही पूरे गोकुल में आनन्द छा गया। वहाँ भगवान् अपनी बाललीला से यशोदा को नित्य रिझाते रहते थे। उनकी वंशी की धुन पर सभी मोहित हो जाते थे। गोपियों के घरों से माखन चुराने के कारण वे माखनचोर कहलाये। श्रीकृष्ण ने बचपन में ही खेल-खेल में पूतना, बकासुर, तृणावर्त आदि का विनाश किया। एक उँगली पर गोवर्धन-पर्वत उठाकर इन्द्र का घमण्ड चूर कर दिया।

एक दिन भगवान् अपनी मित्र-मण्डली के साथ गेंद खेल रहे थे। गेंद यमुना में गिर गयी। बालक श्रीकृष्ण गेंद निकालने के लिये यमुना में कूद पड़े। यमुना में कालिय नाग रहता था। भगवान् उसका मान-मर्दनकर उसके फण पर नृत्य करने लगे। इस प्रकार भगवान् ने छोटी-अवस्था में अनेक लीलाएँ कीं।

कुछ समय बाद श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ गोकुल से मथुरा आए। वहाँ उन्होंने अपने परम भक्त सुदामा, माली और कुब्जा आदि पर कृपा की। तदनन्तर भगवान् ने लीला मात्र से कंस आदि असुरों का संहार कर अपने माता-पिता को बन्धन से छुड़ाया। युद्ध के मैदान में अर्जुन को धर्म, कर्म और शाश्वत सत्य का उपदेश दिया। भगवान् का वह अमर संदेश गीता के रूप में आज भी जन-जन का कल्याण कर रहा है।

लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को हम सब नमस्कार करते हैं।

बुद्धावतार

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले पृथ्वी पर हिंसा बढ़ गयी थी। धर्म के नाम पर निर्दोष पशुओं का वध हो रहा था। तब जीवों की हत्या रोकने के लिये मायादेवी के गर्भ से भगवान् स्वयं बुद्ध के रूप में अवतरित हुए। उनके पिता का नाम शुद्धोधन था। उनकी राजधानी कपिलवस्तु थी। भगवान् बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ के जन्म के बाद उनकी माता का देहान्त हो गया। सिद्धार्थ का पालन-पोषण उनकी विमाता गौतमीदेवी ने किया।

ज्योतिषियों ने कहा था कि राजकुमार या तो चक्रवर्ती राजा होंगे या विरक्त होकर जगत् का कल्याण करेंगे। महाराज शुद्धोदन ज्योतिषियों की इस बात से चिन्तित रहते थे। उन्होंने राजकुमार के लिये बहुत बड़ा भवन बनवा दिया था। उस भवन में दुःख, रोग और मृत्यु की कोई बात न पहुँचे-इसकी कड़ी व्यवस्था कर दी थी। राजकुमार का विवाह राजकुमारी यशोधरा से हुआ था। उनके पुत्र का नाम राहुल था।

राजकुमार सिद्धार्थ अत्यन्त दयालु थे। एक बार उन्होंने पिता से नगर देखने की आज्ञा माँगी। राज्य की ओर से ऐसी व्यवस्था हो गयी कि राजकुमार को नगर में कोई दुःखद दृश्य न दीख पड़े। लेकिन होनहार को कौन रोक सकता है। नगर घूमते समय एक बूढ़ा आदमी सिद्धार्थ को दिखायी पड़ा। इसी प्रकार जब वे दूसरी बार नगर घूमने निकले तो एक रोगी उन्हें मिला। तीसरी बार एक मुर्दा उन्होंने देखा। इन दृश्यों को देखकर संसार के सब सुखों से उनका मन हट गया।

संसार के सुखों से वैराग्य हो जाने पर अमरता की खोज का सिद्धार्थ ने निश्चय कर लिया। एक दिन आधी रात को वे चुपचाप राजभवन से निकल पड़े। वन में कठोर तप करने लगे। अन्त में वे ज्ञान-बोध को प्राप्त करके सिद्धार्थ से भगवान् बुद्ध हो गये।

भगवान् बुद्ध कहते थे-'संसार दुःखमय है। संसार के पदार्थों को पाने की तृष्णा ही दुःख का कारण है। तृष्णा का सर्वथा नाश होने से दुःख का नाश होता है। राग, द्वेष और अहंकार को छोड़ देने से ही जीव की मुक्ति होती है।' सत्य, नम्रता, सदाचार, सद्विचार, सद्गुण, सद्बुद्धि, ऊँचा लक्ष्य और उत्तम ध्यान-ये आठ साधन भगवान् बुद्ध ने मनुष्य की उन्नति के लिये बताए थे।

इस प्रकार उन्होंने संसार में घूम-घूमकर मानव-धर्म का खूब प्रचार किया। यज्ञ में पशु-वध को रोका। जीवों के प्रति प्रेम, अहिंसा और सद्भाव का अमर संदेश दिया। आज भी भगवान् बुद्ध के उपदेश जन-जन के लिये कल्याणकारी हैं।

अहिंसा के अवतार भगवान् बुद्ध को हम सब नमस्कार करते हैं।

कल्कि-अवतार

हमारे धर्मशास्त्रों में भगवान् कल्कि की दसवें अवतार के रूप में चर्चा है। कहा गया है कि ज्यों-ज्यों घोर कलियुग आता जायेगा, त्यों-त्यों दिनों-दिन धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु और बल का लोप होता जायेगा। कलियुग में जिसके पास धन होगा, उसी को लोग कुलीन, सदाचारी और सद्गुणी मानेंगे। जो जितना छल, कपट कर सकेगा, वह उतना ही व्यवहार-कुशल माना जायेगा। ब्राह्मण की पहचान उसके गुण-स्वभाव से नहीं यज्ञोपवीत से हुआ करेगी। जो जितना अधिक दम्भ-पाखण्ड करेगा, उसे उतना ही बड़ा साधु समझा जायेगा। धर्म का सेवन यश के लिये किया जायेगा।

सारी पृथ्वी पर दुष्टों का बोलबाला हो जायेगा। राजा होने का कोई नियम न रहेगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रों में जो बली होगा, वही राजा बन बैठेगा। उस समय के नीच राजा अत्यन्त निर्दय एवं क्रूर होंगे। उनसे डरकर प्रजा पहाड़ों और जंगलों में भाग जायेगी।

उस समय भयंकर अकाल पड़ जायेगा। लोग भूख-प्यास तथा नाना प्रकार की चिन्ताओं से दुःखी होंगे। वे पत्तियों को खाकर पेट भरेंगे। मनुष्य चोरी, हिंसा आदि अनेक प्रकार के कुकर्मों से जीविका चलाने लगेंगे।

कलिकाल के दोष से प्राणियों के शरीर छोटे-छोटे होंगे। चारों वर्णों के लोग शूद्रों के समान हो जायेंगे। गउएँ बकरियों की तरह छोटी-छोटी और कम दूध देने वाली हो जायेंगी। वानप्रस्थी और संन्यासी आदि गृहस्थों की तरह रहने लगेंगे। लोग धर्मशास्त्रों की खिल्ली उड़ायेंगे। वेद-पुराण की निन्दा करेंगे। पूजा-पाठ को सिर्फ ढकोसला मानेंगे। धर्म में पाखण्ड की प्रधानता हो जायेगी। इस प्रकार कलियुग का अन्त होते-होते पृथ्वी पर हिंसा और जातीय संघर्ष बढ़ जायेगा। तब ऐसी स्थिति में धर्म की रक्षा करने के लिये स्वयं भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे।

शास्त्र कहते हैं-कलियुग के अन्तिम दिनों में शम्भलग्राम में विष्णुयश नाम के एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे। उनका हृदय बड़ा उदार होगा। वे भगवान् के परम भक्त होंगे। उन्हीं के

घर कल्कि भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे। वे देवदत्त नामक घोड़े पर सवार होकर दुष्टों को तलवार से मौत के घाट उतारेंगे। वे पृथ्वी पर विलुप्त धर्म की पुनः स्थापना करेंगे।

भगवान् जब कल्कि के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे, उसी समय सत्ययुग का प्रारम्भ हो जायेगा। प्रजा सुख-चैन से रहने लगेगी।

चराचर जगत् के स्वामी भगवान् कल्कि को हम सब नमस्कार करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत का एक महत्वपूर्ण अंश है। यह कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया दिव्य उपदेश है।

गीता 18 अध्यायों का एक काव्य है, जिसमें कुल 701 श्लोक हैं। इन श्लोकों में प्राचीन भारतीय संस्कृति निहित है। वही हमारे राष्ट्र की शोभा है, वैभव है, आभूषण है।

श्रीमद्भगवद्गीता प्रगतिशील जीवन का तेजस्वी स्वर है। गीता जीवन जीने की कला है इसकी अपेक्षा यह कहना उचित होगा कि गीता जीवन को सार्थक बनाने की कला है। ऐसा जीवन जो ज्ञान से प्रकाशवान हो, अटल हो, दृढ़प्रतिज्ञ हो, पद्मपत्र-सा जल में रहकर जल से असंपृक्त हो, भक्तिरस से सिंचित हो, सबके हित में रत हो, कर्म की ऊर्जा से स्पन्दित हो। जिसमें न 'मैं' हो, न 'मेरा'। सबके प्रति समर्पित भाव हो, यज्ञमय हो। गीता का अधिकारी वही है जो तप में विश्वास करता है, जो कर्म में निष्ठा रखता है। गीता का मूल स्वर है - "उठ! कर्म कर। कर्म में तेरा अधिकार है, फल के प्रति आसक्ति छोड़। फलासक्ति कर्म को शिथिल करती है, मन को विचलित करती है क्योंकि इसमें लोभ छिपा होता है।"

गीता का उद्घोष है - "अपने को तपा।" "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।" इस शरीर के बिना हमारे आगे की यात्रा कहाँ ? मन का तप हमें मौन की महिमा तक ले जाता है, वाणी का तप हमें सत्य, प्रिय एवं हित में मेल बिठाने को प्रेरित करता है। तप के द्वारा समन्वित परिपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। वाणी, विचार एवं आचार के बीच समन्वय कर, समृद्ध व्यक्तित्व का निर्माण होता है। ऐसा व्यक्तित्व समाज से जुड़ा हो। प्रकृति के साथ यज्ञरूप हो और प्रभु को समर्पित हो।

गीता भगवान् कृष्ण ने हताश एवं विषादग्रस्त, धर्मविमूढ़ अर्जुन को रणक्षेत्र में सुनाई। जब अर्जुन अश्रुपूरित नेत्रों से, कायरता से भ्रमित होकर, गांडीव छोड़कर कृष्ण के

चरणों में बैठ जाता है और जो कल्याणकारी है, उसे बताने की प्रार्थना करता है तब हँसते हुये श्रीकृष्ण जो अपने प्यारे सखा अर्जुन का रथ चला रहे थे, उसे समझाते हैं, प्रेरित करते हैं, समस्याओं से जूझने की सलाह देते हैं। कहते हैं - ''अपने हृदय की दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिये खड़े हो जाओ। उठना, उठकर जागना और अपने जीवन पथ पर चल पड़ना - यही तो जीवन है।'' अर्जुन के विषाद को भगवान् ने मुस्कराते हुये प्रसाद में बदल दिया।

गीता हमें प्रसन्न रहने का संदेश देती है। प्रसन्नचित्त व्यक्ति सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है। जिसका अन्तःकरण निर्मल हो गया है, वह अवश्य प्रसन्नचित्त होगा, और उसकी बुद्धि भी स्थिर होगी। ऐसा स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सभी दुःखों से मुक्त होगा और अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करेगा। गीता हमें 'पद्मपत्र' की तरह रहने का संदेश देती है। कमल का पत्ता जल में रहता तो है, पर उससे प्रभावित नहीं होता। उसी प्रकार हम संसार में रहें, पर उससे अलिप्त और असंग रहें।

नाव पानी में रहे, पानी नाव में न रहे। हम संसार में रहें, संसार हममें न रहे। जीवन प्रणाली समझाने की इसी कला का नाम है - गीता।

गीता की अभयवाणी कहती है ''मनुष्य, शरीर नहीं, आत्मा है। शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य आत्मा, सच्चिदानन्द ब्रह्म है। इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल इसे गीला नहीं कर सकता और वायु सुखा नहीं सकती। आत्मा अच्छेद्य, अक्लेद्य, अदाह्य, अशोष्य, स्थाणु, अचल और सनातन है।'' ऐसा ज्ञान हृदय में प्रज्वलितकर हमारे मोह और शोक को दूर करते हुये पार्थसारथी कहते हैं : 'मा शुचः' - शोक करना ठीक नहीं है। गीता अभय का संदेश देती है। मृत्यु का अभय, मृत्यु को पुराना वस्त्र त्याग कर नए वस्त्र धारण करने वाला बताया। श्रीकृष्ण ने कहा - ''तू हमेशा था, हमेशा है, हमेशा रहेगा।'' साथ ही समझाया कि न कोई शत्रु है, न मित्र है, तू स्वयं ही अपने लिए सबकुछ है। बस स्वधर्म का पालन कर।

गीता हमें कर्मयोग सिखाती है। कर्मयोग में भगवान् श्रीकृष्ण समझाते हैं कि हमें स्वार्थरहित होकर कर्म करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति लेने के लिए ही आतुर हो और देने के लिये नहीं तो वह वस्तुतः चोर है। सामाजिक और राष्ट्रीय कार्य में सहयोग न देना और कार्य के फलों को दूसरों को न बाँटने की भावना रखना एक अपराध है। सूर्य हमें प्रकाश देता हैं, पृथ्वी माता हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। क्या वे हमसे बदले में कुछ

माँगते हैं? इसी प्रकार हमें भी स्वार्थरहित होकर कर्म करना चाहिए। संसार और उसके दुःखों से बचने के लिए अपने संपूर्ण कर्मों को स्वार्थ और आशारहित होकर परमात्मा के चरणकमलों में अर्पण कर देना चाहिए। श्रीकृष्ण ने बुद्धिमान् पुरुष के बारे में बताते हुए कहा है कि जो व्यक्ति सफलता और असफलता में, सुख और दुःख में, सम्पत्ति और विपत्ति में समान शांत भाव से रहता है, वह ज्ञानी है और वह संसार के झूठे प्रलोभनों से मोहित नहीं होता है। जिस प्रकार अग्नि ईंधन को जला डालती है, उसी प्रकार ज्ञान की अग्नि समस्त इच्छाओं को जला डालती है और मनुष्य चिन्तामुक्त हो परम सुख को प्राप्त करता है।

विद्यार्थियों का कर्तव्य विद्याध्ययन करना और पवित्र, दोषरहित ज्ञान को प्राप्त करना है। गीता हमें यह सिखाती है कि हम अपने कर्तव्य का पालन तन्मयता से करें और कर्म के फल की चिन्ता सर्वथा त्याग दें। गीता हमें धैर्य, मैत्री और क्षमाशीलता का पाठ पढ़ाती है। अतः हमें कोई कार्य उतावलेपन में नहीं करना चाहिए। नहीं तो बाद में पश्चात्ताप और ग्लानि होना अनिवार्य है।

विद्यार्थी जीवन में एकाग्रता की परम आवश्यकता है, क्योंकि जब तक एकाग्रता नहीं होगी तब तक स्वाध्याय ठीक से नहीं होगा। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में शुद्ध आहार-विहार पर विशेष बल दिया है। औषधि जैसे नाप तौलकर ली जाती है, वैसे ही आहार, निद्रा भी नपी तुली होनी चाहिए। हमें प्रत्येक इन्द्रिय पर पहरा बैठा देना चाहिए। भोजन तो अधिक नहीं खा रहे हैं, आवश्यकता से अधिक सो तो नहीं रहे हैं, इत्यादि बातों की बारीकी से जाँच करते रहना चाहिए। जीवन में नियमितता परम आवश्यक है। बुरी चीजें न देखना, अभद्र पुस्तकें न पढ़ना, निन्दा न करना तथा शुद्ध आहार करना परम आवश्यक है। जीवन में एकाग्रता लाने में सर्वाधिक सहायक साधन है ध्यान। प्रतिदिन ध्यान करने से मन शान्त रहता है। इंद्रियां नियंत्रित रहती हैं तथा एकाग्रता-शक्ति का विकास होता है। भगवद्गीता में ध्यान की विधि एवं महत्ता पर विस्तार से चर्चा की गई है जो मानव जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

जीवन को यज्ञमय बनाकर फिर उसे ईश्वर को अर्पित कर देना चाहिए। यही मानव-जीवन का परम लक्ष्य है। अंहकार को छोड़कर शुद्ध हृदय से कर्म करते हुए ईश्वर के प्रति शरणागत हो जाना ही अन्तिम परिणति है। यही गीता का सार है।

उद्विग्नतारहित होकर सफलता, असफलता, हानि, लाभ, यश और अपयश में समानभाव रहकर स्वधर्मपालन में निरत रहते हुए मनुष्य फल के प्रति अनासक्त होकर यदि स्वधर्म का पालन करें तो निश्चय ही अन्ततः मानवजीवन के परमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति होगी। यही गीता में वर्णित निष्काम कर्मयोग का सार है। गीता में स्थितप्रज्ञता, कर्म में कुशलता, बुद्धि की समता, इत्यादि का अनेक सारगर्भित पदों द्वारा प्रतिपादन किया गया है। कर्मयोग के अन्तर्गत जहाँ गीतादर्शन ने सतत् अनासक्तरूप से कर्म करने का उपदेश किया है, वहीं गीता ने मनुष्य को निष्क्रिय रहने का निषेध किया है। गीता में जितनी प्रबलता से कर्मफल में आसक्ति का खण्डन किया गया है, उतनी ही प्रबलता से अकर्मण्य होने का निषेध भी किया गया है। गीता की यह मान्यता है कि कोई भी प्राणी एक क्षण भी बिना कर्म के नहीं रह सकता है। अतः कर्म की अनिवार्यता के साथ उसे अनासक्तभाव से स्वधर्म के पालन हेतु अभिप्रेरित किया गया है।

कर्मयोग की साधना बड़ी महत्वपूर्ण है। फल की चिन्ता किए बिना केवल अनासक्त भाव से कर्म करते रहना और फल से प्रभावित होकर सुखी-दुःखी भी न होना, यह छूरे की धार पर चलना है। गीता दर्शन में इस परम जटिल कार्य को अत्यन्त सरस और रुचिपूर्ण ढंग से भक्तियोग में समन्वित किया गया है। भक्तिमार्ग के अन्तर्गत जितने भी कर्म और जितने भी फल हैं, उन्हें ईश्वर को अर्पित करके कर्म में प्रवृत्त होने का उपदेश दिया गया है। इस प्रकार ईश्वरार्पण बुद्धि से किए गए कर्म मनुष्य के मन में किसी भी प्रकार की विकृति उत्पन्न नहीं करते हैं और अन्ततः इस भक्तिमार्ग पर चलता हुआ साधक कर्मयोग का भलीभाँति अनुसरण करते हुए परम लक्ष्य को प्राप्त करता है। भगवान् और भक्त के बीच भक्ति के द्वारा जीवन के समस्त दुःखों से दूर रहते हुए विचरण करता हुआ साधक अन्ततः परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके संसार के समस्त प्रकार के शोकों से मुक्त हो जाता है। भक्तियोग की महत्ता अनन्यतम है।

गीता के अध्याय 12 में भक्त के गुणों का वर्णन किया गया है। भगवान् को ऐसा भक्त प्यारा है जो किसी से द्वेष न रखे, सबसे मैत्री रखे, सबके प्रति जिसके मन में करुणा हो, जो सुख-दुःख में सम हो, जो व्याकुल न हो, शांत हो, धीर हो, किसी से कोई चाह नहीं, सबके प्रति द्रष्टाभाव हो, केवल निमित्त बनकर जीवन के मध्य खड़ा हो, जिसमें कर्त्तव्य का अभिमान न हो, जो विनम्र, निरहंकार एवं भगवन्मय हो।

मनुष्य के व्यक्तित्व में भलाई-बुराई दोनों का सम्मिश्रण है। हमको बुराई पर विजय और अच्छाई की वृद्धि करनी चाहिए। गीता हमारे अन्दर सद्गुणों को भरने का संदेश देती है। गीता के पास तीन अनमोल शब्द है - तप, दान और यज्ञ। तप के द्वारा समृद्ध व्यक्तित्व का निर्माण होता है; दान द्वारा व्यक्ति समाज से जुड़ता है और सामाजिक कर्तव्यों के प्रति सजग होता है तथा यज्ञ भावना *'सर्वभूतहिते रताः'* का संदेश देती है।

गीता का अद्भुत स्पर्श हताश व निराश व्यक्ति में प्रेरणा व कर्म की ऊर्जा भर देता है। साथ ही साथ श्रीकृष्ण भगवान् का आश्वासन - ''मेरे भक्त का नाश नहीं होता, मैं उसके योगक्षेम का वहन करता हूँ, सारा दायित्व मेरा है। मेरी शरण में आ, मा शुचः - शोक मत कर।'' भगवान् के ये आश्वासन भक्त को अभय बनाते हैं, तथा जीवन को आनन्दमय।

गीता का संदेश है कि 'माम् अनुस्मर युद्ध्य च' - हर समय मुझे याद कर तथा युद्ध कर। जीवन की समस्याओं से जूझते हुए एक पल के लिए भी मुझे मत भूलो। सारे जीवन को पूजा बना दो, कृष्णमय बना दो।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण

अर्जुन उवाच -

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ।।५४।।

हे केशव! स्थितप्रज्ञ अथवा समाधिस्थ के क्या लक्षण होते हैं ? स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता, बैठता और चलता है ?

स्थितप्रज्ञस्य-of the sage of steady wisdom, का-what, भाषा-description, समाधिस्थस्य-of the (man) merged in the superconscious state, केशव-O Kesava, स्थितधीः-the sage of steady wisdom, किम्-what (how), प्रभाषेत-talks, आसीत-sits, व्रजेत-walks, किम्-what (how).

What, O Kesava, is the description of him who has steady wisdom, who is merged in the Super-conscious state? How does one of steady wisdom speak, how does he sit, how does he walk?

श्रीभगवानुवाच -

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।५५।।

हे पार्थ! जब मनुष्य मन में उठती हुई समस्त कामनाओं का त्याग करता है और आत्मा द्वारा ही आत्मा में संतुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

प्रजहाति-casts off, यदा-when, कामान्-desires, सर्वान्-all, पार्थ-O Partha (Arjun), मनोगतान्-of the mind, आत्मनि-in the Self, एव-only, आत्मना-by the Self, तुष्टः -satisfied, स्थितप्रज्ञः -of steady wisdom, तदा-then, उच्यते- (he) is called.

When a man completely casts off, O Partha, all the desires of the mind and is satisfied in the Self by the Self, then he is said to be one of steady wisdom.

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।५६।।

दुःख में जो दुखी न हो, सुख की इच्छा न रखे और जो राग, भय और क्रोध से रहित हो, वह स्थिरबुद्धि मुनि कहलाता है।

दुःखेषु-adversity, अनुद्विग्नमनाः -of unshaken mind, सुखेषु-in pleasure, विगतस्प हः -without hankering, वीतरागभयक्रोधः -free from attachment, fear and anger, स्थितधीः -of steady wisdom, मुनिः -sage, उच्यते-(he) is called.

He whose mind is not shaken by adversity, who does not hanker after pleasures, who is free from attachment, fear and anger, is called a sage of steady wisdom.

यः सर्वत्रनभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५७।।

सर्वत्र रागरहित होकर जो पुरुष शुभ या अशुभ की प्राप्ति से न हर्षित होता है, न शोक करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

यः -he who, सर्वत्र-everywhere, अनभिस्नेहः-without attachment, तत्-that, प्राप्य-having obtained, शुभाशुभम्-good and evil, न-not, अभिनन्दति -rejoices, न-not, द्वेष्टि-hates, तस्य-of him, प्रज्ञा-wisdom, प्रतिष्ठिता-is fixed.

He who is everywhere without attachment, on meeting with anything good or bad, who neither rejoices nor hates, his wisdom is fixed.

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५८।।

कछुआ जैसे सब ओर से अंग समेट लेता है वैसे ही जब यह पुरुष इंद्रियों को उनके विषय में से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हुई कही जाती है।

यदा-when, संहरते-withdraws, च-and, अयम्-this (Yogi), कूर्मः -tortoise, अङ्गानि-limbs, इव-like, सर्वशः -everywhere, इन्द्रियाणि-the senses, इन्द्रियार्थेभ्यः -from the sense-objects, तस्य-of him, प्रज्ञा- wisdom, प्रतिष्ठिता-is steadied.

When like the tortoise which withdraws on all sides its limbs, he withdraws his sense from the sense-objects, then his wisdom becomes steady.

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।५९।।

देहधारी निराहारी रहता है तब उसके विषय मंद पड़ जाते हैं। परंतु रस नहीं जाता। वह रस तो ईश्वर का साक्षात्कार होने से निवृत्त होता है।

विषयाः -the objects of senses, विनिवर्तन्ते-turn away, निराहारस्य-abstinent, देहिनः -of the man, रसवर्जम्-leaving the longing, रसः -longing (taste), अपि-even, अस्य-of his, परम्-the supreme, दृष्ट्वा-having seen, निवर्तते-turn away.

The objects of the senses turn away from the abstinent man leaving the longing (behind); but his longing also turns away on seeing the Supreme.

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।।६०।।

हे कौंतेय! चतुर पुरुष के उद्योग करते रहते पर भी इंद्रियाँ ऐसी प्रमथनशील हैं कि उसके मन को भी बलपूर्वक हर लेती हैं।

यततः -of the striving, हि-indeed, अपि-even, कौन्तेय-O Kaunteya (Arjun), पुरुषस्य-of man, विपश्चितः -(of the) wise, इन्द्रियाणि -the senses, प्रमाथीनि-turbulent, हरन्ति-carry away, प्रसभम्-violently, मनः -the mind.

The turbulent senses, O son of Kunti, do violently carry away the mind of a wise man though he be striving to control them.

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत् मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६१।।

इन सब इंद्रियों को वश में रखकर योगी को मुझमें तन्मय हो जाना चाहिए, क्योंकि अपनी इंद्रियां जिसके वश में हैं, उसकी बुद्धि स्थिर है।

तानि-them, सर्वाणि-all, संयम्य-having restrained, युक्तः -joined, आसीत्-should sit, मत्परः -intent on Me, वशे-under control, हि-indeed, यस्य-whose, इन्द्रियाणि-senses, तस्य-his, प्रज्ञा-wisdom, प्रतिष्ठिता-(is) settled.

Having restrained them all, he should sit steadfast, intent on Me; his wisdom is steady whose senses are under control.

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।६२।।

विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष को उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से कामना और कामना से क्रोध उत्पन्न होता है।

ध्यायतः -thinking, विषयान्-on objects of the senses, पुंसः -of a man, संगः -attachment, तेषु-in them, उपजायते-arises, संगात्-from attachment, संजायते-is born, कामः -desire, कामात्-from desire, क्रोधः -anger, अभिजायते-arises.

When a man thinks of objects, attachment for them arises; from attachment desire is born; from desire arises anger.

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।६३।।

क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रांत हो जाती है, स्मृति भ्रांत होने से ज्ञान का नाश हो जाता है और जिसका ज्ञान नष्ट हो गया, वह मृतक-तुल्य है।

क्रोधात्-from anger, भवति-comes, संमोहः -delusion, संमोहात्- from delusion, स्मृतिविभ्रमः -loss of memory, स्मृतिभ्रंशात्-from loss of memory, बुद्धिनाशः -the destruction of discrimination, बुद्धिनाशात्-from the destruction of discrimination, प्रणश्यति-(he) perishes.

From anger comes delusion; from delusion loss of memory; from loss of memory the destruction of discrimination; from destruction of discrimination he perishes.

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।६४।।

परंतु जिसका मन अपने अधिकार में है और जिसकी इंद्रियां रागद्वेषरहित होकर उसके वश में रहती हैं, वह मनुष्य इंद्रियों का व्यापार चलाते हुए भी चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करता है।

रागद्वेषवियुक्तैः -free from attraction and repulsion, तु-but, विषयान् -objects, इन्द्रियैः -with senses, चरन्-moving (amongst), आत्मवश्यैः - self-restrained, विधेयात्मा-the self controlled, प्रसादम्-to peace, अधिगच्छति -attains.

But the self-controlled man, moving among objects, with his senses under restraint and free form both attraction and repulsion, attains peace.

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।६५।।

चित्त की प्रसन्नता से उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं और प्रसन्नता प्राप्त हो जाने वाले की बुद्धि तुरंत ही स्थिर हो जाती है।

प्रसादे-in peace, सर्वदुःखानाम्-(of) all pains, हानिः -destruction, अस्य-of him, उपजायते-arises (or happens), प्रसन्नचेतसः -of the tranquil-minded, हि-because, आशु-soon, बुद्धिः -intellect (or reason), पर्यवतिष्ठते -becomes steady.

In that peace all pains are destroyed; for the intellect of the tranquil-minded soon becomes steady.

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ।।६६।।

जिसे समत्व नहीं, उसे विवेक नहीं, उसे भक्ति नहीं और जिसे भक्ति नहीं उसे शांति नहीं है, और जहां शांति नहीं, वहाँ सुख कहाँ से हो सकता है ?

न-not, अस्ति-is, बुद्धिः -knowledge (of the Self), अयुक्तस्य-of the unsteady, न-not, च-and, अयुक्तस्य-of the unsteady, भावना-meditation, न-not, च-and, अभावयतः -of the unmeditated, शान्तिः -peace, अशान्तस्य -of the peaceless, कुतः -whence, सुखम्-happiness.

There is no knowledge (of the Self) to the unsteady, and to the unsteady no meditation and to the unmeditated no peace; to the peaceless, how can there be happiness?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।।६७।।

विषयों में भटकनेवाली इंद्रियों के पीछे जिसका मन दौड़ता है, उसका मन वायु जैसे नौका को जल से खींच ले जाता है वैसे ही उसकी बुद्धि को जहां चाहे खींच ले जाता है।

इन्द्रियाणाम्-senses, हि-for, चरताम्-wandering, यत्-which, मनः -mind, अनुविधीयते-follows, तद्-that, अस्य-his, हरति-carries away, प्रज्ञाम् -discrimination, वायुः -the wind, नावम्-boat, इव-like, अंभसि-in the water.

For the mind, which follows in the wake of the wandering senses, carries away his discrimination as the wind carries away a boat on the waters.

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६८।।

इसलिये, हे महाबाहो! जिसकी इंद्रियाँ चारो ओर के विषयों में से निकलकर उसके वश में आ जाती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

तस्मात्-therefore, यस्य-whose, महाबाहो-O mighty-armed, निगृहीतानि-restrained, सर्वशः -completely, इन्द्रियाणि-the senses, इन्द्रियार्थेभ्यः -from the sense-objects, तस्य-his, प्रज्ञा-knowledge, प्रतिष्ठिता -(is) steady.

Therefore, O Mighty-armed, his knowledge is steady whose senses are completely restrained from sense-objects.

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।६९।।

जब सब प्राणी सोते रहते हैं, तब संयमी जागता रहता है। जब लोग जागते रहते हैं, तब ज्ञानवान् मुनि सोता रहता है।

या-which, निशा-night, सर्वभूतानाम्-of all beings, तस्याम्-in that, जागर्ति-wakes, संयमी-the self controlled, यस्याम्-in which, जाग्रति-wake, भूतानि-all beings, सा-that, निशा-night, पश्यतः -(of the) seeking, मुनेः - of the Muni.

That which is night to all beings, in that the self-controlled man wakes; where all beings are awake, that is the night for the sage (muni) who sees.

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।७०।।

नदियों के प्रवेश से भरता रहने पर भी जैसे समुद्र अचल रहता है, वैसे ही जिस मनुष्य में संसार के भोग शांत हो जाते हैं वही शांति प्राप्त करना है, न कि कामनावाला मनुष्य।

आपूर्यमाणम्-filled from all sides, अचलप्रतिष्ठम्-based in stillness, समुद्रम्-ocean, आपः -water, प्रविशन्ति-enter, यद्वत्-as, तद्वत्-so, कामाः - desires,

यम्-whom, प्रविशन्ति-enter, सर्वे-all, सः -he, शान्तिम्-peace, आप्नोति-attains, न-not, कामकामी-desirer of desires.

He attains peace into whom all desires enter as waters enter the ocean which, filled from all sides, remains unmoved, but not the 'desirer of desires'.

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।। ७१ ।।

सब कामनाओं का त्याग करके जो पुरुष इच्छा, ममता और अहंकाररहित होकर विचरता है, वही शांति पाता है।

विहाय-abandoning, कामान्-desires, यः -that, सर्वान्-all, पुमान्- man, चरति-moves about, निःस्पृहः -free from longing, निर्ममः -devoid of mine-ness, निरहंकारः -without egoism, सः -he, शान्तिम्-to peace, अधिगच्छति-attains.

The man attains peace who, abandoning all desires, moves about without longing; without the sense of 'I-ness' and 'my-ness'.

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।७२।।

हे पार्थ! ईश्वर को पहचानने वाले की स्थिति ऐसी होती है। उसे पाने पर फिर वह मोह के वश नहीं होता और यदि मृत्युकाल में भी ऐसी ही स्थिति रहे तो वह ब्रह्मनिर्वाण पाता है।

एषा-this, ब्राह्मी-of Brahman, स्थितिः -state, पार्थ-O Partha, न- not, एनम्-this, प्राप्य-having obtained, विमुह्यति-is deluded, स्थित्वा-being established, अस्याम्-in this, अन्तकाले-in the end of life, अपि-even, ब्रह्मनिर्वाणम्-oneness with Brahman, ऋच्छति-attains.

This is the Brahmic state, O Son of Pritha, Attaining this, none is deluded. Being established therein, even at the end of life, one attains to oneness with Brahman.

श्रीरामचरितमानस के स्वाध्याय की अनिवार्यता

हमारे देश में अभी तक तीन विराट् महर्षि कवि प्रतिभाएँ हुई हैं - जिन्होंने सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को, साधना को, आराधना को, आशा-आकांक्षा को समग्र रूप से अभिव्यक्त किया है। ये कवि नहीं, महाकवि नहीं, इन्हें हम एक नया नाम देना पसंद करेंगे - महर्षि कवि। कुल तीन आदिकवि वाल्मीकि, कृष्ण द्वैपायन भगवान वेदव्यास, जिनकी दो महान मृत्युंजयी कृतियाँ हैं - रामायण और महाभारत और तीसरी प्रतिभा का नाम है - तुलसी, जिनकी कृति का नाम है - रामचरितमानस। लोकभाषा में इतनी सशक्त कृति अभी तक भारत प्राप्त नहीं कर सका। 'मानस' कोटि-कोटि व्यक्तियों के मानस में तरंगित है।

हमारे देश में दो भगीरथ हुए हैं - एक राजा भगीरथ, जिन्होंने भगवती गंगा को स्वर्ग से, शिव की जटाओं से, हिमगिरिसे धरती पर उतारा। दूसरे भगीरथ हैं - तुलसी, जिन्होंने निगमागम से, अनन्त शास्त्रों से, संस्कृत के जटाजूट से ज्ञान की, भक्ति की, कर्म-साधना की गंगा को धरती पर उतारा है। इन्होंने भक्ति व ज्ञान की गंगा को भारतवर्ष के कण-कण में, घाट-घाट में, बाट-बाट में करोड़ों के मन में प्रवाहित किया है। मानस के माध्यम से बहती हुई यह ज्ञान, भक्ति, प्रेम की धारा; करोड़ों के जीवन को आशा, आनन्द व चेतना से भर रही है।

तुलसी का पुरुषार्थ अनन्य है। वह महर्षि अगस्त्य की तरह भारत की संपूर्ण ज्ञान-साधना को तीन चुल्लू से पी जाते हैं। फिर मेघ बन कर रिमझिम बरस कर ज्ञान की सुधा को घर-घर पहुँचाते हैं।

गोस्वामी जी का नाम, परिचय व जीवन भारतवासियों के मन, प्राण, मस्तिष्क में बसा है। इसके बारे में और कुछ कहना अनावश्यक है। तुलसीदास की रचना से केवल पढ़े-लिखे विद्वत्जन ही नहीं, भारत के गाँव-गाँव के लोग भी भलीभाँति परिचित हैं, क्योंकि गोस्वामी जी की निर्मल वाणी केवल पुस्तक में नहीं बसी है; उनकी मधुर, संगीतमय, ज्ञान व भक्ति के रस से सींची हुई चौपाइयाँ हर दिशा में गुंजरित हो रही हैं।

उनकी अमर कृति हमारी संस्कृति का अनमोल दीपक है, जिसकी चिन्मयी आभा चारों ओर फैल रही है। गोस्वामी जी की वाणी से धरती ऊपर उठ गई और स्वर्ग नीचे झुक आया।

गोस्वामी जी का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ, जब हमारा समाज, विनाश की दिशा में था। वह युग राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक - सभी दृष्टियों से हमारे पतन का युग था। हमारी संस्कृति में अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गईं थीं। ऐसे समय गोस्वामी जी ने मानस जैसी संजीवनी बूटी हमें प्रदान की। हमारे समाज व जीवन को बदलने का एक नया मार्ग सुझाया। रामचरित्र के माध्यम से गोस्वामी जी ने हमारी संस्कृति का पुनरुद्धार किया। विकृत होती भारतीय संस्कृति के परिमार्जन के लिये उन्होंने राम के आदर्श चरित्र को आधार बनाया। लगता है गोस्वामी जी में महत् प्रेरणा रही है, महत् प्रेरणा के साथ, महत् उद्देश्य रहा, *'सुरसरि सम सब कहँ हित होई'* का भाव है। लोकमंगलकारी रचना कर सबके मन को निर्मल बनाया। महाकाव्योचित औज्ज्वल्य एवं औदात्य का अवतरण हुआ उनकी लोकमंगलकारी रचना में।

रामचरितमानस धर्मप्राण हिन्दुओं के लिये वेदों के समान पवित्र और नित्य पठनीय धर्मग्रन्थ है। मानस का नित्य पाठ करने से सामान्य विद्यार्थी की भी साहित्य में रुचि बढ़ती है तथा उसे लोकव्यवहार का भलीभाँति बोध हो जाता है। इस अकेले ग्रन्थ में सन्त तुलसी ने धर्म एवं संस्कृति के समस्त सूत्रों को ऐसी सरल और सरस भाषा में पिरोया है कि सहज भाव से वे मन और बुद्धि में अंकित हो जाते हैं। राजा-प्रजा का व्यवहार, आदर्श राजा के लक्षण, पिता-पुत्र का व्यवहार, पति-पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध, भाई का भाई के साथ व्यवहार, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, सन्त-असन्त के लक्षण, मानवीय मूल्यों का स्वरूप, मनुष्य के उत्थान और पतन के कारण, आदि लोक व्यवहार के समस्त पक्षों पर पूर्ण प्रकाश डालते हुए मानव को अध्यात्म की ओर अग्रसर करने की चेष्टा की गई है। सन्त तुलसी का महाकाव्य रामचरितमानस व्यवहार के पथ को अध्यात्म की ओर उन्मुख करके नर में नारायणत्व के प्राकट्य की विधि प्रदर्शित करता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को आत्मोन्नति के लिए इस ग्रन्थ का सतत्, नित्यप्रति पाठ अवश्य करना चाहिए। विद्यालय ने उपर्युक्त भावना से भावित होकर बाल-मन पर धर्म, दर्शन, संस्कृति और लोकव्यवहार के सत्संस्कारों का बीजारोपण करने हेतु मानस पाठ को अपनी प्रार्थना में सम्मिलित किया है।

रामचरित मानस में भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों को व्यापक स्थान मिला है। ये हैं - सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग, करुणा, मैत्री, उदारता, कृतज्ञता आदि। मानस के पात्र इन्हें अपने व्यवहार में लाते हैं तथा समाज के लिये एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं।

सत्य की प्रतिष्ठा के लिये राजा दशरथ अपने प्राण व प्राणप्रिय पुत्र दोनों को त्याग देते हैं। जहाँ राज्य के लिये पिता-पुत्र, भाई-भाई आपस में लड़ते ही नहीं थे अपितु एक दूसरे के प्राण भी ले लेते थे, वहीं अयोध्या जैसे समृद्ध राज्य को भोगने के लिये न भरत इच्छुक हैं, न राम। विश्व का इतिहास युद्धों से भरा है। देशों, जातियों, वर्गों के बीच अनेक लड़ाइयाँ हुई हैं और हो रही हैं। जमीन, जायदाद, धन के लिये आपस में लड़ाइयाँ तो अक्सर देखने-सुनने को मिलती हैं, किन्तु मानस के पात्रों में एक विलक्षण अनोखी होड़ लगी कि कौन कितना बड़ा त्याग करेगा। राजा दशरथ, श्रीराम, भरत, सीताजी, लक्ष्मण सब बड़े से बड़ा त्याग करने को तत्पर हैं। अनासक्ति व त्याग ही हमारी संस्कृति का मूल संदेश है। यही संदेश गोस्वामी जी हमें प्रदान करते हैं। हमारी संस्कृति का उदात्त आदर्श सही माने में मानस में प्रतिबिम्बित हो रहा है।

'मानस' की महत् प्रेरणा है - विश्व मंगल।

तुलसीदास जी स्वयं कहते हैं -

कीरति भनिति भूति भल सोई ।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।।

कीर्ति वही अच्छी है, भनिति - रचना भी वही अच्छी है, धन-सम्पदा भी तभी अच्छी कही जा सकती है - जो देव नदी की तरह सबके लिये हितकर हो।

गोस्वामी जी के प्रति गुरुऋण से हम तभी मुक्ति पा सकते हैं जब हम उनके बताये हुए मार्ग पर चलें और उनके बताये हुए आदर्श को अपने जीवन में उतारें। उनके द्वारा वर्णित साधना से अपने जीवन की दिशा बदल दें। यदि हर एक व्यक्ति इस ओर कदम उठाएगा तो रामराज्य जैसा भव्य आदर्श केवल एक कल्पना नहीं वरन् यथार्थ रूप में साकार हो जाएगा।

सम्पूर्ण रामायण

रघुपति राघव राजाराम ।
पतितपावन सीताराम ।।
जय रघुनन्दन जय घन याम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१. भीर पड़ी जब भक्त पुकारे ।
दूर करो प्रभु दुःख हमारे ।।
दशरथ के घर जन्मे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२. विश्वामित्र मुनीश्वर आये ।
दशरथ भूप को वचन सुनाये ।।
संग में भेजे लक्ष्मण राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३. वन में जाय ताड़का मारी ।
चरण छुआए अहिल्या तारी ।।
ऋषियों के दुःख हरते राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४. जनक पुरी रघुनन्दन आये ।
नगर निवासी दर्शन पाये ।।
सीता के मन भाये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५. रघुनन्दन ने धनुष चढ़ाया ।
सब राजों का मान घटाया ।।
सीता ने वर पाये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

६. परशुराम क्रोधित हो आये ।
दुष्ट भूप मन में हरषाये ।।
जनक राज ने किया प्रणाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

७. बोले लखन सुनो मुनि ग्यानी ।
संत नहीं होते अभिमानी ।।
मीठी वाणी बोले राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

८. लक्ष्मण वचन ध्यान मत दीजो ।
जो कुछ दण्ड दास को दीजो ।।
धनुष तुड़ैय्या मैं हूँ राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९. लेकर के यह धनुष चढ़ाओ ।
अपनी शक्ति मुझे दिखलाओ ।।
छूवत चाप चढ़ाये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१०. हुई उर्मिला लखन की नारी ।
श्रुतिकीर्ति रिपुसूदन प्यारी ।।
हुई माण्डवी भरत के बाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

११. अवधपुरी रघुनन्दन आये ।
घर-घर नारी मंगल गाये ।।
बारह वर्ष बिताये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१२. गुरु वशिष्ठ से आज्ञा लीनी ।
राज तिलक तैयारी कीनी ।।
कल को होंगे राजा राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१३. कुटिल मंथरा ने बहकायी ।
कैकेई ने यह बात सुनाई ।।
दे दो मेरे दो वरदान ।
पतितपावन सीताराम ।।

१४. मेरी विनती तुम सुन लीजो ।
भरत पुत्र को गद्दी दीजो ।।
होत प्रातः वन भेजो राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१५. धरनी गिरे भूप तत् काला ।
लागा दिल में शूल विशाला ।।
तब सुमंत बुलवाये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१६. राम पिता को शीश नवाये ।
मुख से वचन कहा नहीं जाये ।।
कैकई वचन सुनायो राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१७. राजा के तुम प्राण पियारे ।
इनके दुःख हरोगे सारे ।।
अब तुम वन में जाओ राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१८. वन में चौदह वर्ष बिताओ ।
रघुकुल रीति-नीति अपनाओ ।।
आगे इच्छा तेरी राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१९. सुनत वचन राघव हर्षाए ।
माता जी के मन्दिर आये ।।
चरण कमल में किया प्रणाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२०. माता जी मैं तो वन जाऊँ ।
चौदह वर्ष बाद फिर आऊँ ।।
चरण कमल देखूं सुख धाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२१. सुनी शूल सम जब वह बानी ।
भू पर गिरी कौशल्यारानी ।।
धीरज बंधा रहे श्रीराम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२२. समाचार सुनि लक्ष्मण आये ।
धनुष बाण संग परम सुहाये ।।
बोले संग चलूंगा राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२३. सीताजी जब यह सुन पाई ।
रंग महल से नीचे आई ।।
कौशल्या को किया प्रणाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२४. मेरी चूक क्षमा कर दीजो ।
वन जाने की आज्ञा दीजो ।।
सीता को समझाते राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२५. मेरी सीख सिया सुन लीजो ।
सास ससुर की सेवा कीजो ।।
मुझको भी होगा विश्राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२६. मेरा दोष बता प्रभु दीजो ।
संग मुझे सेवा में लीजो ।।
अर्द्धांगिनी तुम्हारी राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२७. राम लखन मिथिलेश कुमारी ।
वन जाने की करी तैयारी ।।
रथ में बैठ गये सुख धाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२८. अवधपुरी के सब नर नारी ।
समाचार सुन व्याकुल भारी ।।
मचा अवध में अति कोहराम ।
पतितपावन सीताराम ।।

२९. श्रृंगवेरपुर रघुवर आये ।
रथ को अवधपुरी लौटाये ।।
गंगा तट पर आये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३०. केवट कहे चरण धुलवाओ ।
पीछे नौका में चढ़ जाओ ।।
पत्थर कर दी, नारी राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३१. लाया एक कठौता पानी ।
चरण कमल धोये सुखमानी ।।
नाव चढ़ाये लक्ष्मण राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३२. उतराई में मुंदरी दीनी ।
केवट ने यह विनती कीनी ।।
उतराई नहीं लूँगा राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३३. तुम आये हम घाट उतारे ।
हम आयेंगे घाट तुम्हारे ।।
तब तुम पार लगइयो राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३४. भरद्वाज आश्रम पर आए ।
राम लखन ने शीश नवाए ।।
एक रात कीन्हा विश्राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३५. भाई भरत अयोध्या आये ।
कैकई को कटु वचन सुनाये ।।
क्यों तुमने वन भेजे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३६. चित्रकूट रघुनन्दन आये ।
वन को देख सिया सुख पाये ।।
मिले भरत से भाई राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३७. अवधपुरी को चलिए भाई ।
यह सब कैकेई की कुटिलताई ।।
तनिक दोष नहीं मेरा राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३८. चरण पादुका तुम ले लीजो ।
दर्शन करके पूजा कीजो ।।
भरत को कंठ लगाये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

३९. आगे चले राम रघुराया ।
निशाचरों का वंश मिटाया ।।
ऋषियों के हुए पूरन काम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४०. जनस्थान आए रघुराई ।
शूर्पनखा की नाक कटाई ।।
खरदूषन को मारे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४१. पंचवटी रघुनन्दन आए ।
कनक मृग मारीच संग धाये ।।
लक्ष्मण तुम्हें बुलाते राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४२. रावण साधु वेश में आया ।
भूख ने मुझको बहुत सताया ।।
भिक्षा दो यह धर्म का काम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४३. भिक्षा लेकर सीता आई ।
हाथ पकड़ रथ में बैठाई ।।
सूनी कुटिया देखी राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४४. धरनी गिरे राम रघुराई ।
सीता के बिन व्याकुलताई ।।
हे प्रिय सीते, चीखे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४५. लक्ष्मण सीता छोड़ नहीं तुम आते ।
जनक दुलारी नहीं गंवाते ।।
तुमने सभी बिगाड़े काम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४६. हे भाई मैं नहीं जिऊँगा ।
नहीं मिलती तो यहीं रहूँगा ।।
लगे चाँदनी जैसे धाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४७. सुन री मैना, सुन रे तोता ।
मैं भी पंखों वाला होता ।।
वन वन लेता ढूंढ तमाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४८. सुन रे गुलाब, चमेली, जूही ।
चम्पा मुझे बता दे तू ही ।।
सीता कहाँ, पुकारे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

४९. हे नाग सुनो मेरे मन हारी ।
कहीं देखी हो जनक दुलारी ।।
तेरी जैसी चोटी याम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५०. श्यामा हिरनी तूही बता दे ।
जनक नन्दनी मुझे मिला दे ।।
तेरे जैसी आँखें श्याम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५१. हे अशोक, मम शोक मिटा दे ।
चन्द्रमुखी से मुझे मिला दे ।।
होगा तेरा सच्चा नाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५२. बन बन ढूंढ रहे रघुराई ।
जनक दुलारी कहीं न पाई ।।
गिद्धराज ने किया प्रणाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५३. चख चख कर फल शबरी लाई ।
प्रेम सहित पाये रघुराई ।।
ऐसे मीठे नहीं हैं आम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५४. विप्र रूप धरि हनुमत आए ।
चरण कमल में शीश नवाये ।।
कन्धे पर बैठाए राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५५. सुग्रीव से करी मिताई ।
अपनी सारी कथा सुनाई ।।
बाली पहुंचाया निज धाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५६. सिंहासन सुग्रीव बिठाया ।
मन में वह भारी पछताया ।।
वर्षा ऋतु आई हे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५७. हे भाई लक्ष्मण तुम जाओ ।
वानरपति को यूँ समझाओ ।।
सीता बिन व्याकुल हैं राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

५८. देश-देश वानर भिजवाए ।
सागर के सब तट पर आए ।।
सहते भूख प्यास और घाम ।।
पतितपावन सीताराम ।।

५९. सम्पाती ने पता बताया ।
सीता को रावण ले आया ।।
सागर कूद गए हनुमान ।
पतितपावन सीताराम ।।

६०. कोने कोने पता लगाया ।
भगत विभीषन का घर पाया ।।
हनुमान को किया प्रणाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

६१. हनुमान उपवन में आए ।
वृक्ष तले सीता को पाये ।।
आँसू बरसे आठो याम ।
पतितपावन सीताराम ।।

६२. रावण संग निशचरी लाके ।
सीता को बोला समझाके ।।
मेरी ओर तुम देखो बाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

६३. मन्दोदरी बना दूँ दासी ।
सब सेवा में लंका वासी ।।
करो भवन चलकर विश्राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

६४. चाहे मस्तक कटे हमारा ।
मैं नहीं देखूँ बदन तुम्हारा ।।
मेरे तन-मन-धन हैं राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

६५. ऊपर से मुद्रिका गिराई ।
सीता जी ने कंठ लगाई ।।
हनुमान ने किया प्रणाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

६६. मुझको भेजा है रघुराया ।
सागर कूद यहाँ मैं आया ।।
मैं हूँ राम दास हनुमान ।
पतितपावन सीताराम ।।

६७. माता की आज्ञा मैं पाऊँ ।
भूख लगी मीठे फल खाऊँ ।।
पीछे मैं लूँगा विश्राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

६८. वृक्षों को मत हाथ लगाना ।
भूमि गिरे मधुर फल खाना ।।
निशाचरों का है यह धाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

६९. हनुमान ने वृक्ष उखाड़े ।
देख देख माली ललकारे ।।
मार-मार पहुँचाये धाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

७०. अक्षय कुमार को स्वर्ग पठाया ।
इन्द्रजीत फाँसी ले आया ।।
ब्रह्मफाँस से बँधे हनुमान ।
पतितपावन सीताराम ।।

७१. सीता को तुम लौटा दीजो ।
उन से क्षमा याचना कीजो ।।
तीन लोक के स्वामी राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

७२. भगत विभीषण ने समझाया ।
रावन ने उसको धमकाया ।।
सनमुख देख रहे हनुमान ।
पतितपावन सीताराम ।।

७३. रूई, तेल, घृत, वसन मँगाई ।
पूँछ बाँध कर आग लगाई ।।
पूंछ घुमाई है हनुमान ।
पतितपावन सीताराम ।।

७४. सब लंका में आग लगाई ।
सागर में जा पूँछ बुझाई ।।
हृदय कमल में राखे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

७५. सागर कूद लौट कर आये ।
समाचार रघुवर ने पाये ।।
जो माँगा सो दिया इनाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

७६. वानर रीछ संग में लाए ।
लक्ष्मण सहित सिन्धु तट आए ।।
लगे सु॰ाने सागर राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

७७. सेतु कपि नल नील बनावें ।
राम-राम लिख सिला तिरावें ।।
लंका पहुँचे राजा राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

७८. निशाचरों की सेना आई ।
गरज तरज कर हुई लड़ाई ।।
वानर बोले जय सिया राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

७९. इन्द्रजीत ने शक्ति चलाई ।
धरनी गिरे लखन मुरझाई ।।
चिन्ता करके रोये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

८०. जब मैं अधपुरी से आया ।
हाय पिता ने प्राण गँवाया ।।
वन में गई चुराई वाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

८१. भाई तुमने भी छिटकाया ।
जीवन में कुछ सुख नहीं पाया ।।
सेना में भारी कोहराम ।
पतितपावन सीताराम ।।

८२. जो संजीवनी बूटी को लाए ।
तो भाई जीवित हो जाये ।।
बूटी लायेगा हनुमान ।
पतितपावन सीताराम ।।

८३. जब बूटी का पता न पाया ।
पर्वत ही लेकर के आया ।।
कालनेमि पहुँचाया धाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

८४. भक्त भरत ने बाण चलाया ।
चोट लगी हनुमत लँगड़ाया ।।
मुख से बोले जय सिया राम।
पतितपावन सीताराम ।।

८५. बोले भरत बहुत पछताकर ।
पर्वत सहित बाण बैठाकर ।।
तुम्हें मिला दूँ राजा राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

८६. बूटी लेकर हनुमत आया ।
लखन लाल उठ शीश नवाया ।।
हनुमत कंठ लगाये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

८७. कुम्भकरन उठकर तब आया ।
एक बाण से उसे गिराया ।।
इन्द्रजीत पहुँचाया धाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

८८. दुर्गापूजन रावण कीनो ।
नौ दिन तक आहार न लीनो ।।
आसन बैठ किया है ध्यान ।
पतितपावन सीताराम ।।

८९. रावण का व्रत खंडित कीना ।
परम धाम पहुँचा ही दीना ।।
वानर बोले जय सिया राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९०. सीता ने हरि दर्शन कीना ।
चिन्ता शोक सभी तज दीना ।।
हँस कर बोले राजा राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९१. पहले अग्नि परीक्षा देओ ।
पीछे निकट हमारे आओ ।।
तुम हो पतिव्रता हे बाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९२. कर परीक्षा कंठ लगाई ।
सब वानर सेना हरषाई ।।
राज्य विभीषन दीन्हा राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९३. फिर पुष्पक विमान मँगवाया ।
सीता सहित बैठे रघुराया ।।
किष्किन्धा को लौटे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९४. ऋषि पत्नी दर्शन को आईं ।
दीन्हीं उनको सुन्दरताई ।।
गंगा तट पर आये राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९५. नन्दी ग्राम पवनसुत आये ।
भगत भरत को वचन सुनाए ।।
लंका से आए हैं राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९६. कहो विप्र तुम कहाँ से आए ।
ऐसे मीठे वचन सुनाए ।।
मुझे मिला दो भैया राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९७. अवधपुरी रघुनन्दन आये ।
मन्दिर-मन्दिर मंगल छाये ।।
माताओं को किया प्रणाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

९८. भाई भरत को गले लगाया ।
सिंहासन बैठे रघुराया ।।
जग ने कहा, "हैं राजा राम" ।
पतितपावन सीताराम ।।

९९. सब भूमि विप्रों को दीनी ।
विप्रों ने वापस दे दीनी ।।
हम तो भजन करेंगे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१००. धोबी ने धोबन धमकाई ।
रामचन्द्र ने यह सुन पाई ।।
वन में सीता भेजी राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१०१. वाल्मीकि आश्रम में आई ।
लव व कुश हुए दो भाई ।।
धीर वीर ज्ञानी बलवान ।
पतितपावन सीताराम ।।

१०२. अश्वमेघ फिर कीन्हों राम ।
सीता बिनु सब सूने काम ।।
लव कुश वहाँ दियो पहचान ।
पतितपावन सीताराम ।।

१०३. सीता राम बिना अकुलाई ।
भूमि से यह विनय सुनाई ।।
मुझको अब दीजो विश्राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१०४. सीता भूमि माहीं समाई ।
देखी चिन्ता करी रघुराई ।।
ब्रह्मचारी बन गए हैं राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१०५. राम राज्य में सब सुख पावें ।
प्रेम मग्न हो हरि गुन गावें ।।
चोरी जारी का नहीं काम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१०६. ग्यारह हजार वर्ष परयन्ता ।
राज कीन्ह श्री लक्ष्मीकांता ।।
फिर बैकुण्ठ पधारे राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१०७. अवधपुरी बैकुण्ठ सिधाई ।
नर नारी सबने गति पाई ।।
शरनागत प्रतिपालक राम ।
पतितपावन सीताराम ।।

१०८. "कमल" ने लीला गाई ।
मेरी विनय सुनो रघुराई ।।
भूलूँ नहीं तुम्हारा नाम ।
पतितपावन सीताराम ।।

दोहा

यह माला पूरी हुई, मनका एक सौ आठ ।
मनोकामना पूर्ण हो, नित्य करे जो पाठ ।।

हनुमानजी का चरित्र

हनुमान जी सर्वप्रथम रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में आते हैं। उनका जीवन उच्चतम मूल्यों की अक्षय निधि है। वे भगवान् राम के परमभक्त हैं। विवेक, भक्ति और सेवा का साकार स्वरूप हैं। कुशाग्र बुद्धि, विवेकपूर्ण अविलम्ब निर्णय, कठिन से कठिन चुनौती का सामना करने की क्षमता, ये उनकी चारित्रिक विशेषताएँ हैं। अपने पिताश्री वायुदेव से विनम्रता से सबकी सेवा करने का गुण अपनाया था। सेवा को जीवन का परम लक्ष्य बनाया। अभिमान का लेशमात्र भी पुट नहीं था। हमेशा अपने को अवध के राजा रघुपति का दास बताते। प्रभु के प्रति पूर्ण समर्पण व शरणागत थे। गोस्वामी जी जब अस्वस्थ हुए तब हनुमान चालीसा की रचना की। हनुमान जी के गुणगान से उनका मन व वाणी शुद्ध हुए और वे रोग से मुक्त हुए।

हनुमान जी एक ऐसे देवता हैं, जिनकी पूजा भारतवर्ष में सबसे अधिक होती है। शहर या गाँव हर गली-कूचे में उनके मन्दिर देखने को मिलते हैं। कहा जाता है कि कलियुग में वे ही एक ऐसे देवता है जो तत्काल और प्रत्यक्ष फल देते हैं। वे एकादश रुद्र के रूप में जाने जाते हैं। वर्तमान भारत में युवावर्ग को दिशा देने के लिए वे एकमात्र ऐसे देवता हैं जिनकी पूजा, आराधना करके, उनके चरित्र का अनुकरण करके, मानव असीमित क्षमता प्राप्त करके, महामानव बनने का सामर्थ्य अर्जित कर सकता है। हनुमान जी अपरिमित बल के भण्डार हैं। इसका कारण यह है कि वे बाल ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्मचर्य व्रत का अखण्ड रूप से पालन करने पर कोई भी व्यक्ति असीमित शक्ति अर्जित कर सकता है।

हनुमान जी अभिमान शून्य हैं, निरहंकारी हैं, हनुमान जी राक्षसों का विनाश करने वाले हैं और सदैव श्रीराम जी की सेवा में समर्पित रहते हैं। शक्ति का सही रूप में उपयोग होने के कारण उनकी शक्ति निरन्तर बढ़ती जाती है। रावण-कुम्भकर्ण शक्ति प्राप्त करने के लिये यज्ञ करते हैं, पर यज्ञ से प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग होते देखकर श्रीराम स्वयं उनके यज्ञ को विध्वंस करने का उपक्रम करते हैं। इसीलिए प्राप्त शक्ति का सदुपयोग करने से वह बढ़ती है। जबकि दुरुपयोग करने से वह शक्तिमान परमात्मा उस शक्ति को स्वयं छीन लेता है। हनुमान जी समस्त गुणों के भण्डार हैं और हनुमान-चालीसा सिद्ध मन्त्र के समान सफलता देने में समर्थ हैं।

खण्ड (ख) राष्ट्रदेवो भव

छत्रपति शिवाजी

हिन्दू पद पादशाही की स्थापना करने वाले महाराज शिवाजी का जन्म संवत् 1684 में शिवनेर दुर्ग में हुआ था। जीजाबाई इनकी माँ थीं। इनके पिता शाहजी बीजापुर के नवाब के यहाँ नौकरी करते थे। शिवाजी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर माता जीजाबाई और दादा कोंणदेव ने पूरी की।

जीजाबाई शिवाजी को रामायण और महाभारत की कहानियाँ सुनाती थीं। अठारह वर्ष की आयु में वे निर्भीक, साहसी और परिश्रमी हो गए। इन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे स्वदेश को मुक्त कराके ही रहेंगे।

शिवाजी ने सर्वप्रथम तोरण दुर्ग पर अपना अधिकार किया और वहीं रामगढ़ का सुदृढ़ दुर्ग बनवाया। उन्होंने पुरंदर और सिंहगढ़ भी जीत लिए। बीजापुर का शाही खजाना लूटकर उन्होंने चारों दुर्गों की मरम्मत करवाई और अस्त्र-शस्त्र एकत्रित किए। उनका साहस दिनों-दिन बढ़ता गया।

बीजापुर का नवाब चिढ़ गया। उसने शिवाजी को मार डालने की धमकी दी। अफजलखाँ को सेना सहित, शिवाजी को पकड़ने भेजा। पर शिवाजी ने उसका वध कर डाला। शिवाजी अब औरंगजेब की सेना पर हमले करने लगे। उन्होंने शायस्ता के पुत्र को मार डाला। पर शायस्ता खाँ बच निकला उसकी उँगलियाँ भागते वक्त तलवार से कट गईं।

इसके बाद जयसिंह के कहने पर शिवाजी आगरा औरंगजेब के दरबार में सन्धि के लिए गए। पर वहाँ उन्हें कैद कर लिया गया। वहाँ से बड़ी कुशलता से वह सबकी आँखों में धूल झोंक कर बीमारी का बहाना कर फलों के टोकरे में बैठकर निकल आये।

सन् 1674 में रामगढ़ के किले पर शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। काशी के पंडित गोगा भट्ट ने उसका यज्ञोपवीत करवाया और वेद-मंत्रों के साथ राजतिलक किया। वे किसी पाठशाला में नहीं पढ़े थे पर उन्हें पर्याप्त ज्ञान था। भूषण ने शिवाजी का यशोगान किया है। शिवाजी धर्मग्रन्थों, पूजागृहों और स्त्रियों का सम्मान करते थे।

संत तुलसीदास

तुलसीदास संत परम्परा के एक महत्वपूर्ण रत्न हैं। उनका जन्म भादों सुदी 11, मंगलवार सम्वत् 1589 को उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में राजापुर ग्राम में हुआ मानते हैं। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था। यह सरयूपारीय ब्राह्मण थे।

कहा जाता है कि यह पैदा होते ही राम बोले थे। अतः इनका बचपन में नाम रामबोला पड़ गया। यह जब पाँच वर्ष के थे तो अनाथ अवस्था में स्वामी नरहरि को मिले। उन्होंने इन्हें अपने आश्रम में रख शिक्षा दी।

कुछ लोगों का कथन है कि जब यह हुए तो इनके मुख में दाँत थे। अतः अशुभ जान माता-पिता ने इनका परित्याग कर दिया।

कुछ दिन बाद माता-पिता दोनों परलोकवासी हो गए। झुनिया नामक दासी ने तरस खाकर इन्हें पाला।

स्वामी नरहरि के यहाँ इनका जीवन ही बदल गया। विद्याध्ययन कर आप अपने गाँव लौट आए। यहाँ रत्नावली नाम की विदुषी कन्या से इनका विवाह हो गया। यह अपनी स्त्री से बहुत प्रेम करते थे। एक बार जब रत्नावली बिना कहे अपनी माँ के घर चली गई, तो यह आँधी, बरसात में कष्टों की परवाह न कर रात्रि में ही नदी पार कर वहाँ जा पहुँचे। पत्नी को यह अच्छा न लगा। उसने कहा -

अस्थि चर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
जो कहुँ होती राम में, होति न तौ भवभीति।।

बस, तुलसीदास को यह बात लग गई और वे विरक्त हो काशी जा पहुँचे। उनके तीर्थों की यात्रा करते हुए वे अयोध्या आए। यहीं तुलसीदास जी ने दो वर्ष और सात माह में रामचरितमानस की रचना की। वे राम के अनन्य भक्त थे। उस समय के विद्वानों ने इनका बड़ा अपमान किया, बुरा भला कहा।

पर उन्होंने रामायण में प्रारम्भ में जहाँ संतों का गुणगान किया है, वहाँ दुष्टों की भी वंदना की है। वे हृदय से दयालु, क्षमाशील और परोपकारी थे। वे सच्चे अर्थों में एक महान संत थे। उन्हें सारा संसार राममय दीखता था।

काशी में प्लेग से पीड़ित होने पर सम्वत् 1680 में इनका देहांत हो गया। इनकी रामायण का भारत के घर-घर में प्रचार है। वह संसार का एक महान् ग्रंथ है। तुलसी सदैव अमर रहेंगे।

जगद्‌गुरु शंकराचार्य

केरल के कालड़ी ग्राम में (कालटी) माता अर्याम्बा ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। बालक के पिता शिवगुरु भगवद्‌भक्त थे। उन्होंने इस बालक का नाम शंकर रखा। शंकर माता-पिता की अकेली सन्तान थे। इनकी शुरु से ही वैराग्य की ओर अधिक रुचि थी। यह प्रायः माँ से सन्यास लेने की चर्चा करते थे।

एक दिन माँ आर्यम्बा और शंकर दोनों नदी में स्नान कर रहे थे। शंकर तनिक आगे बढ़कर चिल्लाने लगे - ''माँ! मगर ने मेरा पैर पकड़ रखा है। वह मुझे खींचे लिए जा रहा है। यदि तू मुझे सन्यास लेने की आज्ञा दे दे तो वह शायद मुझे छोड़ दे।''। पुत्र के प्राणों की रक्षा के लिए माँ ने रोते हुए उसे सन्यास लेने की अनुमति दे दी किन्तु उन्होंने उनसे यह वचन ले लिया कि मरने के बाद माँ की अन्त्येष्टि उन्हें ही करनी होगी क्योंकि तब तक शंकर के पिता का देहावसान हो चुका था। माँ को वचन देकर अत्यधिक अल्प आयु में शंकर घर छोड़कर चले गए।

शंकर ने देश भ्रमण किया और गुरु गोविन्दपाद से विधिवत वेदान्त की शिक्षा ग्रहण की। गुरु ने उनकी प्रखर बुद्धि और तेजस्विता को पहचान लिया और बारह वर्ष की आयु में उन्हें आचार्य पद की दीक्षा दी। अब वे शंकराचार्य हो गए। भारत की पद यात्रा करते हुए उन्होंने अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ कर उन्हें परास्त कर दिया। उस समय भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का ऐसा प्रभाव पड़ गया कि लोग अपने सनातन धर्म को भूल गए थे। वेदपाठ, पूजन, हवन मन्दिरों में देव अर्चना आदि समाप्त हो गई थी। ऐसे समय में शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुर्नस्थापना की। कुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डन मिश्र जैसे विद्वान को शास्त्रार्थ में हराकर उन्हें अपना शिष्य बनाया। उन्होंने अपने चार प्रमुख शिष्यों सुरेश्वराचार्य, त्रोटकाचार्य, हस्तामलकाचार्य तथा पद्‌मपादाचार्य को वैदिक धर्म के प्रचार के लिए नियुक्त किया। एक दिन उन्हें लगा जैसे माँ पुकार रही है तो ये अपने गाँव पहुँचे और सन्यास धर्म की चिन्ता न करते हुए अपनी माँ की मृत्यु के उपरांत अपने हाथों से उनका अन्तिम संस्कार किया तथा पुत्र धर्म के कर्तव्य को पूरा किया। उन्होंने देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखने के लिये चार मठों की स्थापना की। उत्तर में बद्रीनाथ, पश्चिम में द्वारिका, पूर्व में जगन्नाथ और दक्षिण में रामेश्वर धाम की स्थापना की। वे जगद्‌गुरु शंकराचार्य के नाम से विख्यात हैं।

स्वातन्त्रय-वीर सावरकर

28 मई, सोमवार सन् 1883 ई० को महाराष्ट्र के नासिक जिले के भंगूर ग्राम में श्री दामोदर सावरकर के घर माता राधाबाई ने एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया। बालक का नाम विनायक रखा गया। माता राधाबाई बालक विनायक को रामायण, महाभारत, राणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी की कहानियाँ सुनाकर उनमें राष्ट्रीयता और देशभक्ति के भाव भरतीं और प्रफुल्लित करतीं।

विनायक दस वर्ष के ही थे कि माता उन्हें सर्वदा के लिए छोड़कर चली गईं। बालक की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई। यह सिंहवाहिनी दुर्गा की उपासना करते थे। यह तीन भाई थे। इधर इन्हीं दिनों चाफेकर बन्धुओं को फाँसी दी गई। विनायक ने देश-सेवा की प्रतिज्ञा की और गणेशोत्सव, शिवाजी महोत्सवों का आयोजन किया।

बी०ए० पास कर विनायक श्यामजी कृष्ण वर्मा और बाल गंगाधर तिलक के सहयोग से बैरिस्ट्री पास करने लन्दन गए। वहाँ इन्होंने अनेक कार्य किए। 'स्वतंत्र भारत मण्डल' संस्था स्थापित की और 'अभिनव भारत' क्रान्तिकारी संस्था का कार्य किया है। 'मैं ब्रिटिश सरकार का वफादर रहूँगा।' यह प्रतिज्ञा स्वीकार न करने पर इन्हें बैरिस्ट्री का प्रमाणपत्र नहीं मिला। लन्दन से इन्होंने पुस्तकों के आवरण में पिस्तौलें भारत भेजीं और बम बनाने की विधि भी रूसियों से सीखीं।

13 मार्च, 1910 ई० को लन्दन में इन्हें बन्दी बनाया गया। राजद्रोह का अभियोग लगाकर इन्हें ब्रिकटल जेल में बन्द कर दिया गया। 8 जुलाई, 1910 ई० को जब अंग्रेज सरकार इन्हें भारतीय न्यायालय द्वारा दण्डित करवाने के लिए जहाज से भारत ला रही थी, यह शौचालय से पोर्ट-हाल पकड़ छेद से 'जय भवानी' कह समुद्र में कूद पड़े। पर फ्रांस के सैनिकों ने इन्हें पुनः अंग्रेजों को सौंप दिया। इन्हें 10 वर्ष की सजा हुई और इन्हें अंडमान काल कोठरी नं० 123 में रखा गया। इन्हें वहाँ भीषण कष्ट दिए गए। वहीं इनके बड़े भाई गणेश भी बन्द थे। दीवारों पर इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे। कमला, गोमान्तक, हमारी स्वाधीनता का संग्राम भी उन्हीं की देन है। 10 वर्ष यहा वहाँ रहे।

वहाँ से मुक्त होने पर यह रत्नागिरि में बन्दी रहे। 10 मई 1937 को इन्हें मुक्त किया गया। इन्होंने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया।

जनता ने अपने हृदय-सम्राट का अभूतपूर्व स्वागत किया। विनायक छः बार हिन्दू महासभा के अध्यक्ष चुने गए। गाँधीजी की हत्या में इन्हें बन्दी बनाया गया, पर ये निर्दोष सिद्ध हुए। सुभाषबाबू को आजाद हिन्द सेना की प्रेरणा इन्होंने ही दी। अन्त में 26 जनवरी 1966 ई० को दोपहर 11 बजे स्वातन्त्र्य वीर सावरकर विनायक दामोदर माँ भारती की गोद में सदैव के लिए सो गया।

सफल छात्र-जीवन हेतु कुछ प्रेरक सूत्र

1. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम् (श्रद्धावान् को ही ज्ञान प्राप्त होता है।)

श्रद्धावान् मनुष्य को ही ज्ञान प्राप्त होता है। जिस व्यक्ति के अन्तःकरण में श्रद्धा होती है, वही विश्वास कर सकता है। श्रद्धा और विश्वास मिलकर ही मनुष्य का कल्याण करते हैं। जिस छात्र के मन में गुरु के प्रति जैसी और जितनी श्रद्धा होगी, वह उतना ही ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। श्रद्धा के अभाव में तो ज्ञानप्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। यह भी देखा गया है कि जो छात्र कक्षा में कमजोर होते हैं, वे ही प्रायः अपने गुरुजनों की उपेक्षा और उनका अनादर करते हैं। इस उपेक्षा और अनादर के मूल में श्रद्धाहीनता ही होती है, जिसके कारण वे विद्वान् से विद्वान् गुरु से भी कुछ नहीं प्राप्त कर पाते, क्योंकि उनकी बुद्धि पर अश्रद्धारूपी अन्धकार का आवरण चढ़ा रहता है। इसी श्रद्धाभाव की महत्ता को प्रदर्शित करते हुए गीता में कहा गया है-

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।। गीता ४:३९

श्रद्धावान्, तत्पर और जितेन्द्रिय मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान को प्राप्त कर शीघ्र ही वह परम शान्ति को प्राप्त होता है।

अतः छात्र के अन्तःकरण में गुरु के प्रति अगाध श्रद्धाभाव होना नितान्त आवश्यक है। कदाचित् इसी कारण भारतीय संस्कृति में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश ही नहीं, साक्षात् परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है - गुरुः साक्षात् परब्रह्म।

2. स्वाध्यायान्मा प्रमद (स्वाध्याय के प्रति प्रमाद मत करो।)

कोई छात्र चाहे कितना भी मेधावी या प्रतिभावान् क्यों न हो, यदि वह स्वाध्याय नहीं करेगा तो कालान्तर में वह पढ़ा हुआ सब कुछ भूल जायेगा। अतः विद्याध्ययन के बाद

शिष्य को विदा करते समय आचार्य उसे जो उपदेश करते हैं, उसमे एक वाक्य यह भी है - *'स्वाध्यायान्मा प्रमदः।'* अर्थात् स्वाध्याय के प्रति प्रमाद मत करना। आचार्य इस सत्य से भलीभाँति परिचित हैं कि अनवरत अध्ययन के अभाव में अध्ययन किया हुआ विषय भूल जाता है - *'अनभ्यासे विषं विद्या।'* अतः छात्र को चाहिए कि सब कुछ याद होने पर भी उसका निरन्तर अभ्यास करता रहे। 'स्वाध्याय' शब्द लोकव्यवहार में अध्ययन के अर्थ में रूढ़ हो गया है, जबकि शास्त्रों में इस शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों में किया गया है।

महर्षि पतञ्जलि ने अपने ग्रन्थ योगसूत्र में *'तपः स्वाध्याये वर ईश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।'* कहकर स्वाध्याय को तप और ईश्वर प्रणिधान का पूरक बताते हुए उसे आध्यात्मिक बोध से जोड़ने का प्रयास किया है। अपने जीवन के अध्ययन का नाम भी स्वाध्याय है।

स्वाध्याय केवल स्वयं पढ़ना मात्र नहीं है, इसका मूल एवं तात्विक अर्थ है - जिस अध्ययन से स्व को अर्थात् अपने स्वरूप को समझने में सहयोग मिले - वही स्वाध्याय है।

आज के सन्दर्भ में हम कह सकते हैं कि वे दोहे, साखियॉ, भजन पदावली तथा काव्यग्रन्थ जो हमें पशु प्रवृत्तियों से ऊपर उठाकर मानवीय स्तर पर प्रतिष्ठित करते हैं, साथ ही ऐसे मनीषियों, महात्माओं और चिन्तकों के विचार भी स्वाध्याय के अन्तर्गत आते हैं, जो हमें उत्साहित करें और स्वार्थ से ऊपर उठाकर 'शुभ' और 'स्वस्ति' की प्रेरणा दें।

अपनी अन्तः शुद्धि के लिये जो नाम स्मरण होता है, उसको भी स्वाध्याय कहते हैं। अनुभव होता है - जैसे हम धुल गए हैं, खिल गए हैं, स्वच्छ हो गए हैं, मँज गए हैं, अभिषिक्त हो गए हैं, चन्दनादि से अभिलिप्त हो गए हैं, सजाए गए हैं, पवित्र हो गए हैं और प्रकाश से भर गए हैं। जीवन को जो खिले हुए पुष्प की तरह सुरभिमय बना दे, लोकसंग्रह के लिए समर्पण की प्रेरणा दे, उसी का नाम है - स्वाध्याय।

3. कर्मण्येवाधिकारस्ते (तुम्हारा कर्म में ही अधिकार है।)

गीता में हमें कर्म करने की विधि बतायी गयी है। हम सोच सकते हैं कि क्या हमें कर्म करना नहीं आता है जो हमें कर्म करने की विधि बतायी जा रही है। यह सही है कि हम सभी लोग नित्यप्रति कर्म करते हैं, पर यह भी सच है कि कर्म करने की विधि हममें से बहुत कम लोग जानते हैं। कर्म करने की विधि न जानने के कारण ही बहुत से लोग निरन्तर कर्म करते हुए भी दुःख भोगते हैं। गीता हमें कर्म करने की एक ऐसी विधि बताती है जो सबके लिए कल्याणकारी है। छात्र-जीवन से ही अगर इस विधि को अपनाया जाय और इसका

अभ्यास किया जाय तो जीवन में आनेवाले बहुत से दु:खों से सहज ही बचा जा सकता है। कर्म-विधि के प्रतिपादन का मुख्य लोक है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् ।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।। गीता २:४७

अर्थात् तुम्हारा कर्म में ही अधिकार है, फल प्राप्ति में नहीं। अतः तुम कर्मफल के हेतु मत बनो और उपकर्म में भी तुम्हारी आसक्ति न हो। कर्मफल देने वाला तो परमात्मा है, केवल कर्म करते रहो - कर्म को मत छोड़ो, क्योंकि यदि तुमने कर्म छोड़ दिया, तब तो अनर्थ हो जायेगा।

यहाँ कर्म करने की प्रेरणा श्रीकृष्ण भगवान इसलिए देते हैं, क्योंकि कर्म को तो कोई छोड़ ही नहीं सकता। यदि शरीर अथवा वाणी से कर्मों को कोई छोड़ भी दे, तो भी मन में चिन्तन-मनन आदि कर्म तो चलते ही रहेंगे। ठीक ही कहा गया है -

कितना कुछ भी होने पर,
जन-मन मौन नहीं रहता ।
आप आप से कहता है वह,
आप आप से है सुनता ।।

यहाँ पर यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि शरीर और वाणी की तुलना में मन से किये गए कार्य अधिक शक्तिशाली होते हैं। इसलिए जब कर्म करना ही है तो कौन से कर्म किये जायें? इसके उत्तर में गीता में कहा गया है कि मनुष्य को मानव धर्म का अनुपालन करना चाहिए। फिर भले ही परिणाम कुछ भी हो वह उसके लिए मंगलकारक ही होगा। अर्जुन युद्ध से पलायन की बात करता है। पर कृष्ण कहते हैं कि इस युद्ध में मरना भी तुम्हारे लिए कल्याणकारी होगा - *'स्वधर्मे निधनं श्रेयः।'* यदि कोई छात्र पूछे कि स्वधर्म क्या है, तो उसे उत्तर मिलेगा कि अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार विद्याग्रहण करना ही तुम्हारा स्वधर्म है। इसी प्रकार अपनी सम्पूर्ण शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार समर्पित भाव से छात्रों को अपना सम्पूर्ण ज्ञान देना शिक्षक का स्वधर्म है। गीता तथा अन्य धर्मग्रन्थों में धर्म शब्द का अर्थ कर्तव्य-कर्म माना गया है। जो गीता का विशेष सन्देश है और यही है कर्म करने की कल्याणकारी विधि। कृष्ण कहते हैं कि कर्म करते समय फल प्राप्ति की इच्छा मन में नहीं होनी चाहिए, अर्थात् निष्काम भाव से कर्म करो। यदि पूछा जाय कि ऐसा क्यों कहा, तो उत्तर यह है कि कर्म करते समय फल की इच्छा मन में होने पर मन फल के बारे में

अधिक सोचेगा। तात्पर्य यह है कि कर्म करते समय भी मन में फलाकांक्षा होने पर पूरे मन से कर्म नहीं हो सकेगा, क्योंकि आधा मन तो कर्म में लगेगा और आधा उसके फल के बारे में सोचेगा। यह दार्शनिक सत्य है कि मन एक समय में एक ही विषय के बारे में चिन्तन करता है। अतः जिस समय वह कर्मफल के बारे में सोच रहा होगा, उस समय वह कर्म में नहीं लगेगा और बिना मनोयोग के किया गया कर्म कभी सफल नहीं हो सकता। एक उदाहरण से इस बात को समझ सकते हैं। मान लीजिए कि कोई छात्र अपने अध्ययनरूपी कर्म में लगा हुआ है और उसी समय वह यह भी सोच रहा है कि परीक्षा में मुझे सफलता मिलेगी या नहीं, उसका मन दो भागों मे बँट गया। आधे मन से तो वह अध्ययन कर रहा है और आधे मन से परीक्षाफल के बारे में सोच रहा है। कितना अच्छा होता कि वह परीक्षा की चिन्ता छोड़कर पूरे मन से पढ़ाई में लगता।

यहाँ एक और महत्वपूर्ण बात ध्यान देने की है कि कर्म सुखद होता है। जबकि कर्मफल की आकांक्षा दुःख देने वाली होती है – क्योंकि फलाकांक्षा के साथ असफल होने का भय जुड़ा रहता है, यह भय मन को अन्दर से कमजोर और संशयग्रस्त बना देता है। सशंकित मन निर्बल होता है, जो समस्त अनर्थों का कारण बनता है। यहाँ पर कोई यह भी कह सकता है कि फलाकांक्षा से ही तो मनुष्य कर्म करने की प्रेरणा प्राप्त करता है, जब फलाकांक्षा ही नहीं होगी तो मनुष्य कर्म ही क्यों करेगा। ऐसा प्रश्न करनेवालों की गीता में बड़े कठोर शब्दों में निन्दा की गयी है और वहाँ कहा गया है कि जो फल की इच्छा के वशीभूत होकर कर्म करते हैं वे तो बेचारे बड़े दीन-हीन हैं, क्योंकि वे अपने लिए कर्म करते हैं। ऐसे लोगों को गीता में पापी कहकर भर्त्सना की गयी है -

'भुञ्जते ते त्वघं पापं ये पचन्त्यात्मकारणात् ।'

पापी लोग अपना शरीर पोषण करने के लिए ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं। फिर वही प्रश्न उठता है कि फल की इच्छा के अभाव में कर्म करने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त होगी। इसका उत्तर यह है कि समाज का ऋण चुकाने के लिए और अन्तःकरण की शुद्धि के लिए मनुष्य को कर्म करना चाहिए -

'योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगंत्यक्त्वात्मशुद्धये ।'

आत्म-कल्याण चाहनेवाले मनुष्य के लिए निष्काम भाव से किया गया कर्म आत्म-शुद्धि का हेतु बनता है। थोड़े से शब्दों में गीता में कितनी बड़ी बात कह दी गई - कर्मफल की आकांक्षा जहाँ मनुष्य को स्वार्थ की ओर प्रेरित करके उसे संकीर्ण बनाती है,

वहीं निष्कामभाव से किया गया कर्म उसे परमार्थ की प्रेरणा देकर आत्मशुद्धि के द्वारा परमात्मा की ओर प्रेरित करके नर मे नारायणत्व प्रदान करता है। उसके जीवन में सच्चे सुख के अनन्त झरनों के द्वार खोल देता है।

निष्काम भाव से कर्म करने का अभ्यास यदि छात्र जीवन से ही किया जाय तो सम्पूर्ण जीवन सुखमय हो सकता है, पर आवश्यकता है नित्य-प्रति के कार्यों को निष्काम भाव से करने का अभ्यास करने की। थोड़ा-सा प्रमाद या असावधानी हमें जीवन के इस महान लाभ से वंचित कर सकता है।

4. शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (शरीर ही धर्म का साधन है।)

हम सभी लोग जो भी कार्य करते हैं उसका आधार हमारा शरीर ही तो है। शरीर अगर स्वस्थ है तो हम कठिन से कठिन कार्य आसानी से कर लेते हैं, और यदि शरीर अस्वस्थ है तो आसान से आसान कार्य भी सम्पन्न होने में कठिनाई का अनुभव होता है। अतः छात्र जीवन में जितना ध्यान शिक्षा प्राप्त करने में देना चाहिए, उतना ही शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए भी प्रयत्न करने की आवश्यकता है। 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है', इसीलिए यदि शरीर रोगी होगा तो मन भी रोगी हो जायेगा। स्वस्थ जीवन का अर्थ है - शरीर और मन दोनों का स्वस्थ होना।

शरीर और मन दोनों को स्वस्थ रखने के लिए दिनचर्या का नियमित होना नितान्त आवश्यक है। गीता में इसी को योग कहा गया है-

युक्ताहारविहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।। गीता ६:१७

उस व्यक्ति के लिये योग दुःखनाशक होता है, जो युक्त आहार और विहार करने वाला है, यथायोग्य चेष्टा करने वाला है और परिमित शयन और जागरण करने वाला है।

अर्थात् जो व्यक्ति समय पर भोजन करता है, उचित मात्रा में भोजन करता है और सात्विक भोजन करता है तथा अपने कर्म के प्रति जिसकी क्रिया सन्तुलित रहती है। इसका भाव यह है कि कर्म के प्रति उचित श्रम करता है। कभी बहुत अधिक काम करना और कभी आलसियों के समान दिन भर पड़े रहना - दोनों शरीर के लिए हानिकारक हैं। जो समय पर सोता है और समय पर जागता है। साथ ही साथ भोगों को भोगने में जो औचित्य का ध्यान रखता है - उसी का योग सिद्ध होता है। फिर उसके जीवन में दुःख नहीं आता।

गीता में यहाँ प्रत्येक कर्म को औचित्य के आधार पर सम्पन्न करने की बात कही गयी है, और यही स्वस्थ जीवन का मूल मन्त्र भी है। आजकल लोग खान-पान में औचित्य का ध्यान नहीं रखते। चाय की संस्कृति ने सबके स्वास्थ्य को खराब कर दिया है। चाय आपके शरीर की प्रकृति के अनुकूल हो या न हो - फिर भी उसे पीना पड़ता है। कभी-कभी तो कई-कई बार पीना पड़ता है - फिर स्वास्थ्य कैसे ठीक रहेगा। खान-पान के सन्तुलित न होने के कारण ही आज बहुत से लोग उदरविकारग्रस्त हैं।

स्वस्थ जीवन का दूसरा मन्त्र है - नियमित व्यायाम करना। नियमित रूप से व्यायाम करने से न केवल शरीर स्वस्थ रहता है, अपितु शरीर में एक नया जोश - एक नई ऊर्जा-शक्ति का विकास होता है - जिससे शरीर सुडौल और पुष्ट होता है। व्यायाम करने से शरीर के अंग-प्रत्यंग तथा शरीर के सन्धिबन्ध क्रियाशील रहते हैं, जिससे उनमें किसी प्रकार का विकार नहीं आ पाता है। साथ ही जीवनी-शक्ति का विकास भी होता है, जिससे आसानी से रोग शरीर पर आक्रमण नहीं करते हैं। व्यायाम भी इतना होना चाहिए कि शरीर में अत्यधिक थकान न आने पाये - क्योंकि व्यायाम में भी शरीर के अनुसार सन्तुलित मात्रा पर ध्यान देना आवश्यक है। अच्छा होगा यदि किसी योग्य प्रशिक्षक के निर्देशन में व्यायाम किया जाय, क्योंकि अनियमित विधि से किया गया व्यायाम शरीर को हानि भी पहुँचा सकता है।

महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर के संस्थापक बाबू लोकमणि लाल जी के शब्दों में "शरीर के बाहर तथा अन्दर की शुद्धता अति आवश्यक है। बाहर की शुद्धता के लिए नित्य स्नान करें। नहाते समय सारे शरीर को तौलिया से रगड़ें। स्नान सूर्योदय से पहले कर लें तो अच्छा है। सूर्य के प्रकाश से त्वचा में विटामिन डी उत्पन्न होता है जो कि स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। नहाते समय दाँतों व मसूड़ों को उँगली से रगड़ें। इससे मसूड़ें मजबूत होते हैं। दाँतों और मसूड़ों की रक्षा अति आवश्यक है। अधिक ठण्डा जल या शर्बत पीने से मसूड़ें खराब होते हैं। इसी प्रकार अधिक गरम चाय पीने से भी मसूड़ें खराब होते हैं। मिठाई खाने से दाँतों में बैक्टीरिया उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे मसूड़ों और दाँतों में सड़न पैदा होती है और कुछ दिन बाद दाँत निकालने पड़ते हैं। जो व्यक्ति यह समझते हैं कि नकली दाँत लगवाने से असली दाँतों की पूर्ति हो जायेगी तो वे भूल करते हैं। नकली दाँतों से न खाने में स्वाद आता है, और उच्चारण भी अशुद्ध हो जाता है। जो व्यक्ति भोजन के अन्त में मिठाई या आइसक्रीम खाते हैं, उन्हें दाँतों से जल्दी ही हाथ धोना पड़ता है। इसीलिए यदि

कभी भोजन के अन्त में मिठाई खानी पड़े तो उसके बाद पानी में नमक डालकर अच्छी तरह कुल्ला कर लेना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न हो तो कुछ नमकीन आहार जैसे पापड़ खाना चाहिए। मिठाई का थोड़ा सा अंश भी दाँतों या मसूड़ों में रह जाने से बैक्टीरिया पैदा हो जाते हैं, इसलिए दाँतों और मसूड़ों की रक्षा अति आवश्यक है।''

''आन्तरिक शुद्धि के लिए प्रातःकाल कम से कम दो गिलास जल पीना चाहिए। एक गिलास जल पीकर बायीं करवट लेटकर गहरी साँस लेना चाहिए। दो चार मिनट में ही आमाशय से जल आँतों में चला जायगा। इसके बाद फिर एक गिलास जल पीकर दायीं करवट लेटकर गहरी साँस लेना चाहिए। ऐसा करने से आमाशय में जो मल जमा होता है, वह सब आँतों में जाकर शौच के समय बाहर निकल जाता है।''

''इसी प्रकार बिना पॉलिस किया हुआ चावल अधिक लाभदायक होता है, क्योंकि उसमें पोषक तत्व अधिक होते हैं। इसलिए चावल को राइस मिल से ही खरीदना चाहिए। जिनको बिना पालिश किया हुआ चावल खाने में अच्छा न लगे वे लोग केवल पहले पालिशर से निकला चावल ले सकते हैं। इसी प्रकार गेहूँ में भी सारे पोषक तत्व ऊपरी छिलके में होते हैं। आटा मिलों में जहाँ मैदा सूजी बनाते हैं, वहाँ यह सब ऊपर की परत हटा देते हैं। इसलिए मैदा, सूजी की वस्तुएँ हानिकर होती हैं। रोटी सदैव चोकर युक्त आटे से बनी हुई खानी चाहिए। जो लोग मैदा से बनी हुई रोटी खाते हैं, उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह सकता है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वस्थ जीवन के लिए छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। कभी-कभी तो छोटी-छोटी गल्तियाँ करके हम बड़ी बीमारियों को निमंत्रण दे देते हैं, जिसका परिणाम हमें भोगना पड़ता है। अतः स्वास्थ्य विषयक समस्त नियमों का बड़ी सावधानी से पालन करना चाहिए।

5. **चरैवेति** (चलते रहो।)

जीवन एक गतिशील धारा है, यह धारा प्रतिक्षण नया जीवन देती है। प्रवाह ही जीवन का मूल मंत्र है। 'चरैवेति' - चलते रहो, अपने लक्ष्य की ओर, पूर्ण समर्पित भाव से, पूर्ण मनोयोग से, पूरी तत्परता से, मंजिल अवश्य मिलेगी। बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े होने वाले का सौभाग्य खड़ा हो जाता है, पड़े हुये का सौभाग्य सोया रहता है और उठकर चलने वाले का सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

6. कृतज्ञता ज्ञापन

जीवन का अर्थ है देना - कृतज्ञता ज्ञापन। जीवन की सार्थकता है - सबसे प्रेमपूर्वक व्यवहार। अतः संकीर्णता से ऊपर उठो, मन को व्यापक बनाओ, दूसरों को अपना-सा मानना ही प्रेम है। जो दूसरे के सुख से सुखी रहेगा, और दुःख में संवेदनशील रहेगा, वह सदा सुखी रहेगा। हृदय देकर ही हृदय लिया जाता है। मित्रतापूर्ण व्यवहार ही मित्र बनाता है। जीवन देकर ही जीवन का सुख मिलता है।

7. समत्वं योग उच्यते (समभाव ही योग है।)

जीवन में समभाव का महत्व है। जीवन अनेक परस्पर विरोधी किन्तु जीवन के अनिवार्य तत्वों से बना है। इनका इस तरह समन्वय करना चाहिए कि सभी तत्व मिलकर जीवन के विकास और उत्कर्ष में सहायक हों। भोग और त्याग में भी समन्वय आवश्यक है।

8. तेन त्यक्तेन भुंजीथाः (त्यागपूर्वक उपभोग करो!)

हमें जीवन में न भोग भोगना है और न त्यागना है। भोग एवं त्याग के बीच टिकना है। पद्मपत्रवत् रहने की कला को हम सीखें और इसी शैली में जीवन को ढालें।

9. देने के लिये अर्जन करो

जीवन का अर्थ है - देना। सही बँटवारा। समता का यह सम्यक संयोजन ही स्वस्थ और खुशहाल समाज का आधार है। ऋषियों ने कहा है - 'श्रद्धा से दो' - 'श्रद्धया देयम्'। यानी जिसको दे रहे हैं - उसके प्रति आदर का भाव रखते हुए, लेने वाले की कृपा मानते हुए। दान में गर्व नहीं, विनम्रता हो। दान सहज, अनायास हो, जैसे फूल अपनी सुगन्ध लुटाता है, चाँद सभी ओर चाँदनी छिटकाता है, उसी प्रकार जो हमारे पास है वह सबके काम आवे।

10. मा गृधः (लालच मत कर)

लालच न करें। गिद्ध की तरह पराई सम्पदा पर न झपटें। हमारे मन में जो लोभ, ईर्ष्या, स्पर्धा, घृणा के भाव हैं, उसके मूल में भोग की इच्छा है। हमें इसका त्याग करना चाहिए।

11. परस्परं भावयन्तः (एक दूसरे को उन्नत करो।)

मनुष्य सामाजिक जीव है, अतः हमें समाज के साथ, समाज को लेकर आगे बढ़ना है। तरण-तारण का अर्थ है कि हम खुद पार हों और दूसरों को भी पार पहुँचाने का

प्रयत्न करें। परस्पर सहयोग से ही समाज का विकास संभव है। प्रतियोगिता नहीं, सहयोगिता। द्वेष नहीं, प्रेम। आदान नहीं, प्रदान। इन्हीं सूत्रों से स्वस्थ समाज का गठन संभव है।

12. भूमा वै सुखम् (विस्तार में ही सुख है।)

भूमा अर्थात् विस्तार में ही सुख है। जहाँ विराटता, विशालता, व्यापकता, मुक्तता, उदारता है - वहीं सुख और आनन्द है। संकीर्णता, क्षुद्रता, सीमाबद्धता, अल्पता दुःखदायी है।

13. सर्वभूतहिते रताः (सबके हित में जो रत हों।)

सभी प्राणियों की भलाई में रत हों। सभी भूत पंचतत्वों - क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, सबके प्रति शुभ भावना हो, इनका दुरुपयोग न हो, न प्रदूषण हो। मनुष्य तभी जिन्दा रह सकता है – जब उसके चारों ओर का परिवेश शुद्ध हो। पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, धरती, आकाश, सभी अपने निर्मल रूप में रहें। 'सर्वभूतहिते रताः' की चेतना मानव जाति का अस्तित्व बनाये रखने के लिए भी अनिवार्य है।

14. सर्वे भवन्तु सुखिनः (सभी सुखी हों।)

सब सुखी हों, सब नीरोग हों, स्वस्थ एवं प्रसन्न हों। सब कल्याण को ही देखें! कहीं दुःख का नाम न हो। यही हमारी मंगलकामना होनी चाहिए।

'सर्वे' का अर्थ प्राणिमात्र ही नहीं, वरन् इसमें संपूर्ण ब्रह्माण्ड समाहित है। सबको सुखी बनाने की चेतना जब संस्कारगत हो जाती है तो व्यक्ति अपने जीवन को मर्यादित एवं संयमित रखने की दिशा में निरन्तर अग्रसर होता है।

15. संगच्छध्वं (साथ-साथ चलें।)

समाज में, राष्ट्र में या विश्व में अप्रतिहत गति से तभी विकास हो सकता है, जब मानव जाति मिलकर रहे। साथ-साथ चलें, एक-सा बोलें, जहाँ तक विचारों में एकता हो। लक्ष्यभेदन के लिये निरवत् नितान्त तन्मय हो। लक्ष्य में एकता और एकाग्रता के अभाव से हमारी शक्तियाँ परस्पर झगड़ों में बर्बाद हो जाती हैं। हम साथ-साथ चलें, साथ-साथ आगे बढ़ें। यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

16. अभयम् (अभय हों।)

जहाँ दो हैं, वहाँ भय रहेगा ही। भय की बुनियाद है - मैं और मेरा। चित्त की विकलता और अस्थिरता का नाम भय है। गीता में अभय को सद्गुणों का सेनापति कहा

गया है। यह धारणा आत्मा की अमरता के सिद्धान्त पर आधारित है। शरीर का चिन्तन मन को कमजोर बनाता है। आत्मा का विचार अक्षय शक्ति का संचार करता है। हम जितना ही अपने अन्तस्थ ब्रह्मभाव को अभिव्यक्त करने में समर्थ होंगे, हमारा जीवन उतना ही सार्थक होगा।

चरित्र-निर्माण

शिक्षा का सच्चा अर्थ है 'चरित्र-निर्माण'

अंग्रेजी में एक कहावत है - If wealth is lost, nothing is lost; if health is lost, something is lost; if character is lost, everything is lost. - अर्थात् "यदि धन नष्ट होता है, तो कुछ भी नष्ट नहीं होता, यदि स्वास्थ्य नष्ट होता है, तो कुछ अवश्य नष्ट होता है, पर यदि चरित्र नष्ट होता है, तो सब कुछ नष्ट हो जाता है।" यह चरित्र ही व्यक्ति का प्राण है, जिसके न रहने से वह चलते-फिरते मुर्दे के ही समान है।

चरित्र तीन स्तम्भों पर खड़ा होता है - पहला कर्मठता, दूसरा निर्भीकता, और तीसरा निःस्वार्थ्य। चरित्रवान् व्यक्ति में आलस्य का अभाव होता है, वह उद्यमशील होता है, कोई भी कार्य उसके लिए असम्भव नहीं होता। उसमें भय का सर्वथा अभाव होता है। वह अन्याय के सामने नहीं झुकता। उसमें साहस इतना भरा होता है कि न्याय और सत्य की रक्षा के लिए वह जोखिम उठाने से नहीं कतराता। उसमें दूसरों के लिए जीने की प्रवृत्ति होती है। वह ऐसा मानता है कि अपने लिए तो पशु भी जीते हैं, मनुष्य-जीवन की सार्थकता वह इसमें देखता है कि वह दूसरों के काम आए। जब चरित्र निःस्वार्थता की कसौटी पर कसा जाता है, तब उसमें निखार उत्पन्न होता है। ऐसा ही व्यक्ति समाज और देश के काम आता है। चरित्र को रीढ़ की हड्डी कहा गया है। यदि रीढ़ की हड्डी दुर्बल या क्षीण हो, तो मनुष्य अपंग हो जाता है। उसी प्रकार चरित्र के बिना व्यक्तित्व भी अपंग या खोखला हो जाता है। जिस देश में चरित्रवान् व्यक्तियों की संख्या जितनी अधिक होगी, वह देश जीवन के सभी क्षेत्रों में उतना ही समृद्ध होगा।

चरित्र का तात्पर्य है मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता और मानवीय मूल्यों का अर्थ है एक व्यक्ति की दूसरे के प्रति सहानुभूति और सहयोग का भाव। आज हम चारित्रिक संकट के दौर से गुजर रहे हैं। इसमें मानवीय मूल्य नहीं रह जाते, आस्थाएँ एकदम समाप्त हो जाती हैं, व्यक्ति केवल स्वार्थलोलुप रह जाता है और येनकेनप्रकारेण स्वार्थ-साधन को

ही अपने जीवन का मूलमंत्र मानता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा देश अपनी बहुविध समस्याओं का समाधान करते हुए विश्व के मंच पर यशस्वी बनकर उभरे, तो हमें चरित्र निर्माण पर सबसे अधिक बल देना पड़ेगा।

(क) चरित्रनिर्माण के आवश्यक तत्त्व

1. अनुशासन

अनुशासन वह खराद है, जो हीरे का मल दूर कर उसे चमका देता है। हम चमकना तो चाहते हैं, पर खराद की प्रक्रिया से गुजरना हमें पसन्द नहीं। हम सब कुछ आसानी से, शार्ट कट के द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं। हम इसे बुद्धिमानी समझते हैं। पर है यह हमारी नादानी, और हमारी यह नादानी देश को किस प्रकार तबाह कर रही है, यह दृश्य तो आँखों के सामने ही है।

अनुशासन प्रारम्भ में बलपूर्वक ही करना पड़ता है, बाद में वह सहज हो जाता है। यथार्थ में अनुशासन तो वह है, जो भीतर से आता है। उसमें समाज और कर्तव्यबोध जुड़ा होता है।

2. स्वच्छता

अँग्रेजी में तो एक कहावत ही है कि Cleanliness is next to godliness" – अर्थात् ईश्वरत्व के बाद यदि किसी की महत्ता है, तो वह है स्वच्छता की।

सर्वप्रथम है - शारीरिक स्वच्छता। उसके बाद है - मन की पवित्रता। मन को बुरे विचारों से बचाने का तरीका है - उसे व्यस्त रखना, और अवकाश के समय उसे स्वस्थ मनोरंजन में लगाना। फिर वाणी पर नियंत्रण भी बहुत आवश्यक है। शुभ विचारों का एक अन्तर्प्रवाह हमारे भीतर बहता रहे। वह बुरे विचारों से हमारी रक्षा करेगा और हमारे चारों ओर पवित्रता तथा नैतिकता का वातावरण बनाएगा।

3. समयबद्धता

समयबद्धता जीवन के सभी क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण है। यदि हम समय पर उठने, सोने, खाने-पीने और अपने काम-काज की आदत डालें, तो हम महानता प्राप्त करने की ओर एक सार्थक कदम उठा रहे हैं। इसके द्वारा अल्प समय में कार्य करने की क्षमता पैदा होती है। संसार में जिन व्यक्तियों ने सम्मान अर्जित किये हैं, उनमें से अधिकांश का जीवन

समय की पाबन्दी की एक सुन्दर गाथा रहा है। महात्मा गाँधी इसके एक ज्वलन्त उदाहरण रहे हैं।

4. स्वाध्याय

स्वाध्याय अर्थात् अध्ययन का अभ्यास। स्वाध्याय हममें ज्ञान पैदा करता है। ज्ञान उसे कहते हैं जो उचित और अनुचित का भेद बताता है - यह सिखाता है कि किससे व्यक्ति का कल्याण होता है। अध्ययन मनुष्य को बुराइयों से बचाता है।

स्वाध्याय हमें मनोबल प्रदान करता है और हममें अध्यवसाय के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है। अतएव जीवन में यदि हमें कोई चस्का लगाना ही है, तो हम स्वाध्याय का चस्का लगाएँ।

5. अभ्यास

जीवन के हर क्षेत्र में अभ्यास की बड़ी महिमा है। किसी भी क्रिया को इस प्रकार दुहराना कि वह सहज हो जाय, अभ्यास कहलाता है। अभ्यास की प्रारम्भिक प्रक्रिया उबाऊ और कष्टदायक होती है। पर जब अभ्यास सध जाता है, तब वही प्रक्रिया हमारे लिए सहज होकर सुखकर हो जाती है। हम तैरने का अभ्यास करते हैं। पहले-पहल अंग-अंग टूटने लगते हैं, देह थकावट से चूर हो जाती है। पर जब तैरने का अभ्यास सध जाता है, तब हम अपनी थकावट दूर करने के लिए तैरने जाते हैं। जाकर पानी पर चित्त लेट जाते हैं। हाथ-पैर तनिक नहीं हिलते। पर इस क्रियाहीन दिखनेवाली स्थिति को साधने के लिए हमें कितना अभ्यास करना पड़ता है, यह तो वही जानता है, जो इस प्रक्रिया से गुजरा हो। अभ्यास द्वारा ही हम अपने कार्यक्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते हैं।

6. ईमानदारी

ईमानदारी ही मनुष्य के अस्तित्व का मूल आधार है। ईमान मनुष्य का धर्म है और उसके नष्ट होने से मनुष्यता ही नष्ट हो जाएगी।

7. परोपकार

परोपकार मानवीय धर्म है। गोस्वामी तुलसीदास ने परोपकार को सबसे बड़े धर्म की संज्ञा दी है। वे कहते हैं - *"परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"* - अर्थात् परोपकार के समान धर्म नहीं और परपीड़ा के समान अधर्म नहीं।

8. आत्मविश्वास

जीवन में सबसे बड़ा पाठ आत्मविश्वास का है। हममें अनन्त सम्भावनाएँ निहित हैं, हमारे भीतर वह अनन्त शक्तिधर ब्रह्म ही छिपा है। पर हममें विश्वास की कमी है, इसीलिए हमारे भीतर का सुप्त शक्तिदेव जागता नहीं। आत्मविश्वास ही वह रसायन है, जो मनुष्य को अन्तरिक्ष चीरकर चन्द्रमा पर जाने की क्षमता प्रदान कर रहा है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि विश्व का इतिहास उन गिने-चुने लोगों ने बनाया, जिनका अपने आप में, अपनी क्षमता में दृढ़ विश्वास था। रात्रि में सोते समय और सुबह उठते ही अपने भीतर यह भाव उठाना चाहिए कि मुझमें असीम शक्ति है, मेरा अन्तःकरण अनन्त शक्ति का भण्डार है, मेरे रास्ते की बाधाएँ दूर होकर ही रहेंगी, मुझे अपना अभीप्सित लक्ष्य अवश्य ही प्राप्त होगा। इस चिन्तन का बारम्बार आवर्तन आत्मविश्वास को पुष्ट करेगा। केवल एक सावधानी रखनी होगी कि आत्मविश्वास कहीं अभिमान की वृत्ति को न जगा दे।

9. अभय या निर्भयता

निर्भयता मनुष्य की एक अत्यन्त दुर्लभ विभूति है। निर्भयता की यह धारणा आत्मा की अमरता के सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त हममें अद्भुत साहस का संचार करता है। शरीर का चिन्तन दुर्बलता को जन्म देता है, आत्मा पर विचार हममें अक्षय शक्ति का संचार करता है।

10. विनम्रता

'विद्या ददाति विनयम्' - विनयशीलता व्यक्ति का आभूषण है, वाणी की शोभा है, चित्त की प्रफुल्लता तथा उदारता का प्रतीक है। विनम्र व्यक्ति स्वागत और सम्मान अर्जित करता है।

(ख) व्यक्तित्व विकास में बाधक तत्व

1. क्रोध

क्रोध अन्तःकरण की वह वृत्ति है, जो इच्छा की पूर्ति में बाधा आने से उत्पन्न होती है। यह वृत्ति केवल अन्तःकरण तक अपने को सीमित नहीं रखती, वरन् इसकी प्रतिक्रिया शरीर पर भी होती है। क्रोध धीरे-धीरे विवेक पर पर्दा डाल देता है, जिससे बुद्धि उचित-अनुचित का विचार नहीं कर पाती। गीता के अनुसार 'क्रोध मनुष्य के विनाश का कारण बनता है।'

2. ईर्ष्या

मनुष्य के अन्तःकरण में एक ऐसी भी प्रवृत्ति होती है जिसके कारण वह दूसरों की सफलता देखकर अपने भीतर जलन का अनुभव करता है। इसे 'ईर्ष्या' कहकर पुकारा गया है। यह एक मानसिक रोग है, मनुष्य मन को सन्तप्त करता रहता है।

3. उत्तेजना

मनुष्य का मन ऐसे साँचे में ढला है कि तनिक प्रतिकूलता से वह उत्तेजित हो उठता है। उत्तेजना में मनुष्य अपना आपा खो बैठता है और उसका विवेक दब जाता है, फलस्वरूप उसमें पशुता उमड़ आती है और वह ऐसी हरकतें कर बैठता है, जो कदापि मनुष्योचित नहीं कही जा सकती। उत्तेजना ही सब प्रकार के दुष्कर्मों और पापों की जड़ है। वह मनुष्य के पारिवारिक और सामाजिक जीवन को दुःखमय कर देती है। इसलिए मनुष्य को उत्तेजित होने से बचना चाहिए।

4. चिन्ता

चिन्ता तो मनुष्य के स्वभाव में है। चिन्ता को चिता कहकर पुकारा गया है। चिता की आग के समान यह चिन्ता भी जलाती है। चिन्ता का निदान है - स्वस्थ चिन्तन का अभ्यास।

5. दोष-दर्शन

जब हम व्यक्ति का हित करने के लिए उसके दोषों को देखते हैं, तो वह उचित है। पर जहाँ दोष-दर्शन के पीछे व्यक्ति के अहित का भाव हो, वह अनुचित है। ऐसे दोष-दर्शन से हमें बचना चाहिए।

6. भय

'भय' मन की एक विचित्र वृत्ति है, जो व्यक्ति को कमजोर बना देती है। हममें जाने कितने प्रकार का भय समाया रहता है। वास्तव में व्यक्ति को कल्पना का भूत ही सताता है। जब हम अकेले किसी अँधेरे स्थान से गुजरते हैं, तो हमारा हृदय एक अज्ञात भय से काँपने लगता है और हमें पत्थर या वृक्ष भी चलते-फिरते भूत के रूप में दिखायी देने

लगते हैं। इसका कारण है हम पर बचपन में डाले गये भय के भाव। भय का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह मनुष्य को शक्तिहीन कर देता है।

7. वहम

वहम का कारण है - मन की कमजोरी; इसलिए उसको दूर करने का उपाय है - मन को बली और सशक्त बनाना। मन को थोड़ा-सा दृढ़ बनाकर वहम से छुटकारा पाया जा सकता है।

8. अहंकार

अहंकार मानव को मानव से दूर करता है। अहंकार मनुष्य में छद्मभाव जगाकर उसे प्रगति मार्ग से हटाता है और विनाश का कारण बनता है। अहंकार के स्थान पर विनम्रता और सदाशयता को प्रतिष्ठित करना चाहिए।

9. कपट

कपटी व्यक्ति की '*मुँह में राम बगल में छुरी*' से उपमा दी जाती है। वह किसी का भी विश्वासपात्र नहीं बन सकता। छल और कपट जुड़वा भाई हैं, इसलिए सभी ऐसे व्यक्ति से दूर रहना चाहते हैं। कपट विनाशकारी है।

(ग) दैवी सम्पदा (गीता 7/13)

अमानित्वं अदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।*

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव दम्भाचरण का अभाव, किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से न सताना, क्षमावान् होना, मन वाणी आदि की सरलता, श्रद्धा भक्ति सहित गुरुसेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि (शरीर, मन व आचरण की शुद्धता), अन्तःकरण की स्थिरता और मन-इन्द्रियों सहित शरीर पर संयम मनुष्य को देवत्व के निकट लाने का प्रयास करते हैं।

* (श्लोक की विस्तृत व्याख्या एवं कक्षोपयोगी Activity के लिए CCMT की पुस्तक Values देखें।)

हमारी संस्कृति के प्रतीक चिह्न

1. हम दीप क्यों जलाते हैं?

'प्रकाश' ज्ञान का प्रतीक है और 'अंधकार' अज्ञान का। ईश्वर वह चैतन्यतत्त्व है जो हमारे सम्पूर्ण ज्ञान का मूल स्रोत है और उसे प्रकाशित भी करता है। अतः प्रकाश की पूजा स्वयं ब्रह्म के रूप में की जाती है। जिस प्रकार प्रकाश अंधकार को मिटा देता है, उसी प्रकार 'ज्ञान' अज्ञान का नाश कर देता है। 'ज्ञान' एक ऐसी चिरस्थायी आन्तरिक सम्पत्ति है, जिसके द्वारा सभी बाह्य उपलब्धियाँ सम्पन्न की जा सकती हैं।

जिस प्रकार केवल एक दीप सैकड़ों दीपों को ज्योतित कर सकता है, ठीक उसी प्रकार एक ज्ञानी बहुतों की ज्ञानज्योति को जला सकता है। इतना ही नहीं, ज्ञान बाँटने से कम नहीं, अपितु नित्य-प्रति बढ़ता है। दीप जलाते समय यह प्रार्थना करते हैं –

दीप ज्योतिः परब्रह्म दीपः सर्वतमोपहः ।
दीपेन साध्यते सर्वं सन्ध्यादीपो नमोऽस्तुते ।।

अर्थात् मैं प्रातः/सांध्य दीप को प्रणाम करता हूँ जिसका प्रकाश ज्ञान-तत्व (ब्रह्म) है, जो अज्ञान के अंधकार को मिटाता है और जिसके द्वारा जीवन में सबकुछ प्राप्त किया जा सकता है।

यही कारण है कि लगभग प्रत्येक भारतीय घर में प्रतिदिन भगवान् की वेदी के सामने दीप जलाया जाता है। कुछ घरों में दिन में दो बार (प्रातः और सायं) तो कुछ घरों में तो यह लगातार अखण्ड ज्योति के रूप में जलता रहता है। दैनिक पूजा, त्यौहार हो अथवा सामाजिक समारोहों का आरम्भ दीप जलाकर ही किया जाता है।

मन में यह शंका उठ सकती है कि यदि प्रकाश ही पूज्य है तो क्यों न बिजली के बल्ब जलाए जायँ? वे भी तो अंधकारनाशक हैं। परम्परागत तेल का दीपक जलाने का एक और भी आध्यात्मिक महत्व है। दीपक का तेल हमारी वासनाओं का प्रतीक है, और दीपक की बाती हमारे 'अहं' का प्रतीक। आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा प्रज्ज्वलित होकर हमारी वासनाएँ धीरे-धीरे क्षीण होने लगती हैं और अन्त में हमारे अहं का भी नाश हो जाता है। दीपक की लौ सदा ऊपर की ओर जाती है, जो हमें यह संदेश देती है कि हम ऐसा ज्ञान अर्जित करें जो हमें उच्चतर आदर्शों की ओर ले जाएँ।

2. हम नमस्ते/नमस्कार क्यों करते हैं?

दुनिया भर में अभिवादन करने के तरीके, प्रक्रिया अलग-अलग हैं। परन्तु भारतीय एक दूसरे का अभिवादन 'नमस्ते' कहकर करते हैं। 'नमस्ते' बोलते समय दोनों हथेलियों को जोड़कर हृदय स्थल के आगे लाते हैं और नतमस्तक होते हैं। यह अभिवादन बराबर की आयु के, बड़े, मित्र और अपरिचित सभी को किया जाता है।

'नमस्ते' शब्द की सार्थकता - संस्कृत में नमः + ते = नमस्ते अर्थात् मैं नमन करता हूँ, अभिवादन करता हूँ या आपको प्रणाम करता हूँ। इतना ही नहीं, नमः का शाब्दिक अर्थ न अहं ही है, अर्थात् मैं नहीं। हम अपने अंहकार को समाप्त कर आपको नमन करते हैं, आपको श्रेष्ठ मानते हैं। वास्तव में नमन का, प्रणाम का या अभिवादन का भाव ऐसा ही होना चाहिए। यह नमस्कार मात्र शारीरिक प्रक्रिया ही नहीं अपितु अपने आप में भारतीय संस्कृति की पहचान संजोये है।

नमस्ते का आध्यात्मिक अर्थ और भी गहरा है। ईश्वरत्व, देवत्व या शक्ति जो मुझमें है, वही सबमें व्याप्त है। वास्तव में नतमस्तक होना, सामने वाले को हाथ जोड़कर अभिवादन करना - इस अभिन्नता को, अभेद सम्बन्ध को स्वीकार करना ही है। सही अर्थों में हम उस ईश्वरीय शक्ति को प्रणाम करते हैं जो हममें, आपमें, सबमें व्याप्त है। यही कारण है कि हम कभी-कभी नमस्कार के रूप में 'राम-राम' 'जय श्रीकृष्ण' अथवा 'हरिऊँ' बोलते हैं - जो देवत्व स्वीकार करने का ही सूचक है।

यदि हम इस महत्त्व को समझ लें तो हमारा अभिवादन ऊपरी चेष्टामात्र अथवा शाब्दिक नहीं रह जाएगा, बल्कि दूसरे व्यक्ति के साथ प्रेम और आदर के वातावरण में और भी गहरे आदान-प्रदान का रास्ता आसान कर देगा।

3. हम भोजन आरम्भ करने के पूर्व ईश्वर को अर्पण क्यों करते हैं?

हम भारतीयों का यह दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, सर्वज्ञ है, सम्पूर्ण है और प्राणी उसका अंश है। हम जो कुछ भी करते है, सब उसकी शक्ति और कृपा से ही सम्भव है। अतः अपने कर्मों के फलस्वरूप हम जो कुछ भी प्राप्त करते हैं, सब उसकी कृपा से ही प्राप्त करते हैं। भोजन करने से पूर्व ईश्वर को स्मरण करना (ऊँ ब्रह्मार्पणें) उस सर्वव्यापी परमात्मा के प्रति आभार प्रकट करना है। आरती के ये शब्द भी *"तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा"* इसी का उदाहरण है। मन से भगवान् को भोजन अर्पण करने के

पश्चात् उसके दैवी स्पर्श से हमारा भोजन ईश्वर का प्रसाद बन जाता है। तत्पश्चात् भोजन करते समय भोजन और खाने की क्रिया के प्रति हमारा समस्त भाव ही बदल जाता है। हम प्रसाद बुद्धि से भोजन ग्रहण करते हैं और फिर खाने के पहले बाँट कर खाते हैं, भोजन के विषय में शिकायत अथवा आलोचना नहीं करते, क्योंकि अब हम मात्र भोजन नहीं प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं। हम ऐसे प्रसादमय भोजन का अपचय नहीं कर सकते, न ही उसे फेंकने का पाप कर सकते हैं।

जब हमारा यह भाव पक्का हो जाता है, तब क्रमशः भोजन के दायरे से ऊपर उठ, हमारे समस्त जीवन में यह भाव हो जाता है, फिर हमें जीवन में जो भी प्राप्त होता है, उसे हम ईश्वर का प्रसाद समझ कर प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं।

4. हमारा प्रकृति प्रेम - हम पेड़-पौधों को पवित्र क्यों मानते हैं?

पुरातन काल से ही भारतीय पेड़-पौधों की पूजा करते रहे हैं और समस्त वनस्पति और जीव-जंतु को पावन मानते आए हैं। यह कोई पुराना रिवाज अथवा असभ्य प्रथा नहीं है। यह हमारी संस्कृति की संवेदनशीलता और दूरदर्शिता को उजागर करती है। वह चैतन्यशक्ति जो हमारे अन्दर है, वह सभी प्राणियों में वनस्पतियों में भी व्याप्त है। इसलिए उन सबको पवित्र माना जाता है। इस पृथ्वी पर मानव-जीवन भी पेड़-पौधों पर निर्भर है। वे हमें भोजन, ऑक्सीजन, वस्त्र, आश्रय-स्थल, दवा आदि सभी उपादान देते हैं, जिनसे इस धरती पर हमारा जीवन सम्भव हो पाता है। वास्तव में ये पुष्प, ये वृक्ष, ये वनस्पतियाँ हमारी निःस्वार्थ सेवा कर, हमारा पालन-पोषण करने के लिए अपना बलिदान भी कर देते हैं। आज़कल मानव के निर्मम स्वभाव के कारण संसार में वनों के विनाश का और पेड़-पौधों की बहुत सी जातियाँ लुप्त होने का गंभीर संकट बना हुआ है। इस गंभीर समस्या के प्रति सचेत होना हम सबका पुनीत कर्तव्य है। कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारी संस्कृति का एक अंग है। इसीलिए भारत में हमें पेड़-पौधों का आदर करने की शिक्षा दी जाती है।

हमारे शास्त्रों के निर्देशानुसार यदि किसी कारण से हमें एक वृक्ष काटना पड़ जाए, तो हमें दस वृक्ष और लगाने चाहिए। हमें यह भी प्रेरणा दी जाती है कि वृक्ष काटने से पूर्व उस पाप-कर्म से बचने के लिए हम उनसे क्षमायाचना करें। ऐसा पवित्र एवं वैज्ञानिक चिन्तन था हमारे मनस्वियों का, जिसके फलस्वरुप प्रकृति और पुरुष का संतुलन सदैव बना रहा है, सम्प्रति इस चिन्तन की महती आवश्यकता है।

5. हम 'ॐ' का उच्चारण क्यों करते हैं?

'ॐ' ईश्वर का सार्वभौम नाम है। ईसाई और इस्लाम धर्म में इसे 'आमीन' कहते हैं। यह ऐसा ध्वनि प्रतीक है, जिसका भारत में सर्वाधिक उच्चारण किया जाता है। उच्चरित करने वाले के शरीर और मन तथा वातावरण पर भी इसका बहुत प्रभाव पड़ता है। बहुत से मंत्र ओर वैदिक प्रार्थनाएँ 'ॐ' से प्रारम्भ होती हैं। यह शब्द तीन अक्षरों से बना है - 'अ', 'उ' और 'म्'। ये तीनों अक्षर तीन अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति), तीन देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु और शिव), तीन वेद (ऋक्, यजुः और साम), तीन लोक (भूः, भुवः, स्वः), आदि के प्रतीक हैं और ईश्वर इनसे परे हैं। 'ॐ' को प्रणव भी कहते हैं, जिससे ईश्वर की स्तुति की जाती है, वेदों का सम्पूर्ण सार 'ॐ' शब्द में सन्निहित है।

ऐसा कहा जाता है कि भगवान् ने संसार की रचना 'ॐ' 'अथ' का उच्चारण करने के बाद की। 'ॐ' की ध्वनि किसी कठिन कार्य को आरम्भ करने के लिये शुभ होती है।

'ॐ' का उच्चारण एक घंटी की गूंज की ध्वनि जैसा होना चाहिये (जैसे अ ऽ उ ऽ ऽ म् ऽ ऽ) यह मन को शक्ति से भर देता है। बहुत से लोग (महात्मा) 'ॐ' के भावार्थ पर ध्यान लगाकर पूर्ण बोध को प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार 'ॐ' सबकुछ व्यक्त करता है - जीवन का लक्ष्य, और उस लक्ष्य तक पहुँचने का साधन, जगत् और उसका आधार स्वरूप सत्य, ईश्वर का साकार निराकार रूप - सबकुछ।

6. हम तीन बार शान्ति क्यों कहते हैं?

शान्ति हमारे जीवन की स्वाभाविक स्थिति है। अशान्ति हम स्वयं उत्पन्न करते हैं अथवा दूसरों के कारण होती है। अतः हमारे प्रत्येक विचलन और क्षोभ के मूल में शान्ति का निवास है। अशान्ति की समाप्ति पर शान्ति का अनुभव सहज ही हो जाता है क्योंकि यह पहले से ही सर्वत्र विद्यमान है। जहाँ शान्ति है, वहाँ आनन्द है। प्रत्येक प्राणी, बिना किसी अपवाद के, अपने जीवन में शान्ति चाहता है।

शान्ति का आह्वान करने के लिये हम प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना से क्षोभ और दुःख समाप्त हो जाते हैं और बाह्य कष्टों पर ध्यान दिये बिना, हृदय में शान्ति का अनुभव होता है। प्रायः सभी प्रार्थनाएँ तीन बार शान्ति कहकर समाप्त की जाती हैं।

शान्ति का उच्चारण तीन बार क्यो? - हमारी सभी बाधाएँ, समस्याएँ और व्यथाएँ तीन स्रोतों से उत्पन्न होती हैं -

1. आधिदैविक - उन अदृश्य, दैवी शक्तियों के कारण जिन पर हमारा बहुत कुछ अथवा बिल्कुल नियन्त्रण नहीं होता, जैसे ग्रहों, प्रेतों, दैवीय शक्तियों द्वारा उत्पात।।

2. आधिभौतिक - हमारे आस-पास के कुछ ज्ञात कारणों से - जैसे दुर्घटनाएँ, मानवीय सम्पर्क, प्रदूषण, अपराध आदि से।

3. आध्यात्मिक - हमारी शारीरिक और मानसिक समस्याएँ - जैसे क्रोध, निराशा या कुंठा आदि से।

हम ईश्वर से सच्चे मन से प्रार्थना करते हैं कि कम से कम किसी विशेष कार्य का उत्तरदायित्व निभाते समय अथवा हमारी दिनचर्या के समय भी, ऊपर बताए गए स्रोतों से उत्पन्न होनेवाली बाधाएँ न आएँ, अथवा बाधाएँ कम हो जाएँ। शान्ति प्राप्ति की तीव्र हच्छा पर बल देने के लिये हम तीन बार शान्ति का उच्चारण करते हैं। पहली बार उच्च स्वर में, अदृश्य शक्तियों को संबोधित किया जाता है। दूसरी बार कुछ धीमे स्वर में, अपने बिल्कुल आस-पास के वातावरण और व्यक्तियों की ओर लक्ष्य किया जाता है, और तीसरी बार, बिल्कुल धीमें स्वर में, अपने आप को सम्बोधित किया जाता है।

प्रतीक दर्शन

कर दर्शन :

कराग्रे वसते लक्ष्मी करमूले सरस्वती ।
करमध्ये तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम् ।।

'हाथ के अग्र भाग में लक्ष्मी का वास है, हाथ के मूलभाग में सरस्वती है, मध्य में गोविन्द हैं, इसलिए सुबह हाथ का दर्शन करें।'

संसार में कोई भी वस्तु बिना पुरुषार्थ के प्राप्त नहीं होती। मानव में यदि प्रयत्न और पुरुषार्थ का अभाव है और केवल लालसा है तो वह निरर्थक जीवन का प्रतीक है। सबेरे उठते ही हाथ का दर्शन करके मानव को अपने पुरुषार्थ का आह्वान करना चाहिए।

हाथ पुरुषार्थ का प्रतीक है। सुबह हाथ के दर्शन से व्यक्ति में अपने पुरुषार्थ और परिश्रम के प्रति जागृति आती है। संसार में कोई भी कार्य मेरे लिए असंभव नहीं है। इस

आत्मविश्वास का अनुभव मानव करता है। पुरुषार्थ से सब कुछ सम्भव है, ऐसे विश्वास से मानव कठिन से कठिन कार्य करने में भी समर्थ बन जाता है।

हाथ के मूलभाग में सरस्वती (विद्या) है। सरस्वती मूल में है, इसका अर्थ है कि किसी भी कार्य की नींव में ज्ञान की मजबूती होनी चाहिए। सच्चे ज्ञान के बिना संपत्ति या ईश्वर कृपा नहीं प्राप्त होती है। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों विश्व की महान शक्तियाँ हैं। सरस्वती के पास दृष्टि है और लक्ष्मी के पास सामर्थ्य है। संसार में सामान्यतः ऐसा देखा जाता है कि मानव धन और विद्या प्राप्त करके अहंकारी अथवा उन्मत्त हो जाता है, विशेषकर यदि विद्या या धन की अधिकता हो। हाथ के मध्य में गोविन्द हैं, ऐसा कहकर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के बीच संतुलन और समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

सरस्वती पूजन :

या कुन्देन्दुतुषारहार धवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेत पद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिर्भिदेवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेष जाड्यापहा ।।

'जो कुन्द पुष्प (श्वेत कमल) तुषार (ओस) और मुक्ताहार (मोतियों की माला) जैसी धवल हैं, जो शुभ्र वस्त्रों से आवृत है, जिनके हाथ वीणारूपी श्रेष्ठ दंड से शोभित हैं, जो श्वेत कमल के आसन पर विराजित हैं, ऐसी सम्पूर्ण जड़ता (अज्ञानता) को दूर करने वाली भगवती सरस्वती! मेरी रक्षा करें।

सरस्वती कुन्द, इन्दु, तुषार और मुक्ताहार जैसी धवल हैं। सरस्वती के सभी उपासकों में भी ऐसी ही धवलता होनी चाहिए। सरस्वती के सच्चे साधक को पुष्प की सुगन्ध की तरह अपने ज्ञान की सुगन्ध को सर्वत्र फैलाते रहना चाहिए। चन्द्रमा जिस तरह अपनी शीतल चाँदनी से सम्पूर्ण विश्व को शान्ति प्रदान करता है ठीक इसी तरह सच्चा साधक अज्ञानता से संतप्त लोगों को ज्ञान की शीतलता प्रदान करता है। वृक्ष के पत्ते पर पड़ी हुई ओस की बूँद मोती की शोभा धारण करके वृक्ष के सौन्दर्य को बढ़ाती है, उसी तरह सरस्वती के सच्चे उपासक से संसार-वृक्ष की शोभा बढ़ती है। अकेले मोती से मोतियों का हार ज्यादा सुन्दर लगता है। सरस्वती के उपासकों को भी इसी तरह एक सूत्र में बँधकर (एकता) काम करने की तैयारी रखनी चाहिए।

माँ सरस्वती धवल (सफेद) वस्त्र धारण किए हैं। सरस्वती के उपासक को भी मन, वाणी और कर्म से शुभ्र, स्वच्छ, पवित्र होना चाहिए। वीणाधारिणी सरस्वती से प्रेरणा लेकर सरस्वती के साधकों को कलाकार होना चाहिए, उनकी रचनात्मकता में रुचि होनी चाहिए।

सरस्वती श्वेत कमल के आसन पर विराजमान है। सरस्वती का उपासक भी श्वेत अर्थात् विशुद्ध चरित्र का होना चाहिए।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश जैसे मुख्य देव माँ शारदा का वंदन करते हैं, इसका प्रतीकार्थ यह है कि माँ सरस्वती ज्ञान और भाव की प्रतीक हैं। यह बात उनके हाथ में स्थित पुस्तक और माला से समझ में आती है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश अनुक्रम में सर्जक, पालक और संहारक देव हैं बिना भाव (भावना) का सर्जन बिना ज्ञान का पालन और बुद्धिहीन संसार अनर्थ का द्योतक है। इसलिए किसी भी कार्य के सर्जन (निर्माण) में उस कार्य को सुदृढ़ बनाने में और उस कार्य में स्थित दोषों को दूर करने के लिए माँ सरस्वती की उपासना पवित्र मन से, शुद्ध भाव से करनी चाहिए। सरस्वती के वरदान के बिना जीवन को धन्य नहीं बनाया जा सकता।

प्रेरक कथाएँ

कृतज्ञता - दुर्लभ गुण

महर्षि वाल्मीकि पूछ रहे हैं, देवर्षि नारद से, 'आप कोई ऐसा चरित्र जानते हैं, अधुना इस लोक में, जो धर्मज्ञ हो और साथ ही 'कृतज्ञ' भी हो। आश्चर्य, वाल्मीकि हजारों गुणियों को जानते हैं, पर, उनकी खोज है - कृतज्ञ की। कृतज्ञता-स्वयं में कोई गुण नहीं, वह तो दूसरों के गुणों के प्रति पूज्य बुद्धि है। उपकार की स्वीकृति है। कृतज्ञ व्यक्ति नम्र होता है, अहंकारविहीन होता है और दूसरों के महत्त्व को झुककर स्वीकार करता है। नारदजी ने कहा – 'हाँ हैं - सूर्यवंशी राम।'

आज के युग का भी यही प्रश्न है; कितने कम होते हैं - कृतज्ञ व्यक्ति! कोई किसी के लिए कुछ करे, अपनी गर्दन भी काट कर दे दे; तो भी शिकायत, कोई कमी की बात! कहेगा - 'गर्दन तो मेरे लिए काट कर रखी, पर, जरा टेढ़ी कटी थी!' वह तो सामने वाला गया, इधर खाने वालों को स्वाद भी नहीं आया। कहते हैं – कृतघ्नता सबसे बड़ा पाप है,

उसका कोई प्रायश्चित भी नहीं। पर, सुनता कौन है, आज अनेक व्यक्ति बड़े कद वाले हैं, वे किसी के कंधे पर खड़े हैं और उसके सहारे को नकारते ऊपर चढ़ जाते हैं। कहते हैं - हम तो अपने-अपने बल बूते पर बढ़े हैं -

इस भीड़ में जिस शख्स का कद सब से बड़ा है ।
वो शख्स किसी और के कंधे पर खड़ा है ।

यदि कृतज्ञता जरा फैलने लगे तो यह भीड़ एक समाज में बदल जाएगी। समाज लहरनुमा बनेगा - जहाँ हर लहर कहेगी - 'पहले आप आगे; मैं भी आई!'

राम की लम्बी यात्रा - रामायण

भगवान् राम ने रामेश्वर में सेतु बनाकर लंका पर चढ़ाई की। सेतु बंध रामेश्वर में सेतु बना है - पाषाण खंडों से। पर, यदि हम गंभीरता से विचार करें तो भगवान् राम ने अपनी लीला से जो सेतु बनाया है वह तो चिन्मय सेतु है, (ज्ञान का, प्रेम का, मिलन का सेतु) यही इस कथा की अलौकिकता है।

यह सेतु है – पिता-पुत्र का, भाई-भाई का, स्वामी-सेवक का, राजा-प्रजा का, शहर-ग्राम का, पंडित-अपंडित का, गृहस्थ-वानप्रस्थ का। ऐसे सेतु को बनाने के लिए भगवान् राम ने अपने भाई व पत्नी के साथ - नंगे पैरों से, कांटों से भरे पथ पर वन-वन, डगर-डगर, अयोध्या से सुदूर लंका तक, विंध्य को लांघकर पदयात्रा की। उपेक्षितों, पीड़ितों व त्रस्तों की रक्षा करते हुए एक लंबी यात्रा। यानी 'अयन' इसी का नाम है - राम + अयन = रामायण।

आइए, हम भी रामायण को बैठकर केवल गावें नहीं, पढ़े नहीं जरा आसपास घूमकर उपेक्षितों व अभावग्रस्तों की यदा-कदा सुध लें। रामायण जीने का ग्रंथ है; कोरा पढ़ने सुनने मात्र का नहीं।

भगवान् को यह नहीं पसन्द है

परमेश्वर सबको प्यार करते हैं, सबके सुहृद हैं - यानी अकारण बंधु हैं, हितैषी हैं। पर, जैसे एक शल्य चिकित्सक रोगी से प्यार करता है, इसलिए वह शल्य क्रिया में गलित विषाक्त अंग में चीरफाड़ भी करता है, यह चीरफाड़ भी हित भावना से भरी है।

इसी तरह परमेश्वर भी इन सात से नफरत करता है पर, यह नफरत भी संसार के लिए भीतरी प्यार से छलक रही है -

भगवान् को ये नापसंद हैं -

(1) घमंड से चढ़ी हुई आंखें, (2) झूठ बोलने वाली जीभ, (3) निर्दोष का खून बहाने वाले हाथ, (4) बुराई की ओर दौड़ने वाले पैर, (5) अनर्थ की कल्पना करने वाला मन, (6) झूठ बोलने वाला गवाह, (7) भाई-भाई में फूट डालने वाला आदमी।

एक और जगह यह बात यों कही गई है - खुदा तीन को नापसंद करता है और तीन को बहुत नापसंद।

(क) कुकर्मी को नापसंद करता है, पर, बूढ़े कुकर्मी को बहुत नापसंद।

(ख) कंजूस को नापसंद करता है, पर, धनी कंजूस को बहुत नापसंद।

(ग) अहंकार को नापसंद करता है, पर, साधु अहंकारी को बहुत नापसंद।

इस नापसंदी के प्याले में क्या हमें प्रेम के छलकते हुए अमृत को नहीं देखना चाहिए।

त्यागी हैं - आप !

एक महात्मा त्यागी थे। चारों ओर उनका यश था। एक बार उनके सम्मान में देश भर के नामी लोग एकत्र हुए। सभी ने महात्मा के त्याग की महिमा का मुक्त हृदय से वर्णन किया। वर्णन यथार्थ था, उसमें कोई अत्युक्ति नहीं थी।

अंत में महात्मा ने आशीष वचन कहे – 'आप लोगों ने जो मुझे त्यागी कहकर पुकारा है, वह एकदम गलत है। मुझे आप अधिक से अधिक बुद्धिमान कह सकते हैं। क्योंकि त्यागी वह है, जो बहुमूल्य चीज को छोड़ दे। मैंने तो संसार की नाशवान्, तुच्छ वस्तुओं को छोड़ा है और उससे बढ़िया, नित्य सुखस्वरूप भगवान् की भक्ति का पल्ला पकड़ा है; इसमें मेरी बुद्धिमानी झलकती है, त्याग नहीं।

त्याग तो आप लोग कर रहे हैं; जो संसार की झूठी चीजों में लग रहे हैं और नित्य अनंत काल तक रहने वाले आनंद का त्याग कर रहे हैं।'

सचमुच हम यह तो देख रहे हैं कि किसी सिद्धार्थ ने गृह सुख को छोड़ा पर, बुद्ध बनकर कितना पाया इसका हिसाब नहीं लगाते। साधु-संन्यासियों के लोभ को हम कहाँ समझ पाते हैं।

संत तो बुद्धिमान हैं जो सही की ओर, सच्चे लाभ की ओर बढ़ रहे हैं।

बस, लगे रहो लगन से

एक पतली-सी क्षीण जलधारा बह रही है, पर्वत के ऊपरी भाग के एक चट्टानी खंड पर। जलधारा पतली, क्षीण, चट्टान कठोर और अडोल। पर, जलधारा बह रही है, रात और दिन में, गर्मी-सर्दी में, अंधेरे-उजाले में-सतत बह रही है। यह क्या हुआ, चट्टान टूटकर खिसक गई और जलधारा है अब भी प्रसन्न, गंभीर और वेगपूर्ण। इस परिवर्तन का रहस्य है - सततता। यह सातत्य योग है। ध्यान योग, ज्ञान योग और कर्म योग - तीनों के अंतराल में साधने वाला एक योग है - सातत्य योग।

जीवन में हमें चाहे कुछ भी पाना हो, चाहे लौकिक हो या अलौकिक। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों की सिद्धि के मूल में यही सातत्य योग रहता है।

पर, हम जीवन में गड्ढे खोदते हैं, कुआँ नहीं। एक काम शुरु किया, सफलता हाथ नहीं। दूसरा शुरु, फिर उकता गए। तीसरा नया शुरु? यों ही बदलते-बदलते जीवन खत्म कर देते हैं।

पूरे लगते नहीं, जब तक धुन न हो, लगन न हो, एक नशा न हो - तब तक सिद्धि कहाँ ?

रुद्र का अभिषेक तभी सधता है, जबकि पतली धार निरंतर मस्तक पर गिरती रहे। रुद्र को स्नान कराना हो तो घट एक ही क्षण में खंडेल दें, पर, यह रुद्राभिषेक नहीं, तो फिर सिद्धि नहीं।

इसी का एक नाम है - अभ्यास ! अभ्यास की परिभाषा है - दीर्घकाल तक निरंतर, अविश्रांत, श्रद्धा, सत्कार व दृढ़ता के साथ - जमे रहना।

तपः निरत कुमारी पार्वती के शब्दों में सातत्य योग का यह महोच्चार है -

जन्म कोटि लगि रगर हमारी ।
बरउँ संभु न त रहउँ कुँआरी ।

घमंडी का सर नीचा

हनुमान जी लंकादहन करके लौट रहे थे, उन्हें समुद्र लांघने, सीताजी को तलाशने और रावण के मद-मर्दन का गर्व हो रहा था। दयालु भगवान् ने इसे ताड़ लिया।

हनुमानजी को प्यास लग गई। महेंद्राचल पर दृष्टि दौड़ाई, वहीं एक मुनि बैठे थे। हनुमानजी ने जाकर कहा - 'मुने! मुझे प्यास लगी है। किसी जलाशय का पता बताइए।'

मुनि ने तर्जनी से तालाब दिखाया। हनुमानजी सीताजी की दी हुई चूड़ामणि, मुद्रिका और ब्रह्माजी का दिया हुआ एक पत्र-मुनि के आगे रखकर जल पीने चल पड़े। इतने में एक दूसरा बंदर आया और सभी वस्तुओं को मुनि के कमंडलु में डाल गया। तब तक हनुमानजी जल पीकर लौटे। हनुमानजी ने अपनी वस्तुओं के लिए पूछा - मुनि ने इशारे से कमंडलु दिखाया। हनुमानजी ने कमंडलु में देखा तो ठीक उसी प्रकार की रामांकित हजारों मुद्रिकाएँ दिखाई दीं। अब तो बहुत घबराए। उन्होंने मुनि से पूछा -'ये मुद्रिकाएं आपको कहाँ से मिली और इनमें मेरी मुद्रिका कौन-सी है?'

मुनि - 'जब-जब रामावतार होता है, सीताजी का पता लगाकर जब हनुमान आते हैं तो यहीं पर मुद्रिका छोड़ जाते हैं। वे सभी यहाँ पड़ी हैं। हनुमानजी का घमंड हवा हो गया। उन्होंने मुनि से पूछा - ऐसा कितनी बार हुआ है। मुनि ने कहा - 'गिन कर देख लो। हनुमान जी ने देखा कि इन मुद्रिकाओं का कहीं अंत नहीं। सोचा-न जाने कितने मेरे जैसे हनुमान पीछे हो चुके हैं-मेरी इनमें क्या गणना?' वे मुँह लटकाए प्रभु से कहने लगे- 'प्रभो! मुझसे एक अपराध हो गया है।' सारी बातें कह सुनाई। प्रभु राम ने कहा, 'भद्र! मुनिरूप से मैंने तुम्हारे लिए यह कौतुक तुम्हारे कल्याण के लिए रचा था। देखो, वह मुद्रिका तो मेरी अंगुली में ही लगी है।' हनुमान प्रभु के चरणों में लेट गए, और चिरकाल तक लेटे रहे। *(आनंद रामायण से)*

आदमी जुड़ा तो विश्व जुड़ा

दसवीं कक्षा का कमरा था। यह भूगोल पढ़ाने का समय था। अध्यापक ने संसार के मजबूत गत्ते से बने मानचित्र के टेढ़े-मेढ़े टुकड़े मेज पर बिखेर दिए थे। सब लड़कों से कहा, 'इन टुकड़ों से संसार बनाओ।' लड़के बहुत होशियार थे। टुकड़ों को जोड़ने में लग गए। कभी हिंदुस्तान बने तो चीन बिखर जाए, पाकिस्तान लंगड़ा रह जाए। कभी यूरोप बने तो अफ्रीका ठीक न बने। अमेरिका को पूरा बनाने में जुटें तो बने बनाए देश गड़बड़ा जाएं।

एक बुद्धिमान लड़का अलग खड़ा विचार कर रहा था कि आज इस परीक्षा के पीछे कोई रहस्य छिपा है। हो सकता है, इन टुकड़ों को उलटकर देखने से कोई गुर हाथ लग जाए, रहस्य की कुंजी मिल जाए। वह अकेला आगे बढ़ा और साथियों से बोला, 'आप लोग यह श्रम बंद करें, मुझे पांच-दस मिनट का समय दें।' सब लड़के अलग खड़े हो गए। उस

लड़के ने उन टुकड़ों को उलटकर रखा, वह यह जानकर स्तब्ध रह गया कि सब के पीछे पूरे मनुष्य के अंग-प्रत्यंग के चिह्न लगे हैं। लगता है पूरे इंसान को तोड़कर रख दिया है। उसने धीरज से जोड़ना शुरु किया, यह मस्तक, यह गला, यह छाती, ये हाथ, ये उंगलियाँ - शरीर के अंग जुड़ते गए। एक पूरे स्वस्थ मनुष्य का शानदार स्वरूप खड़ा हो गया। उसने कहा, इसे उलट दो, अब सारा संसार बना हुआ तैयार है।

आज हम समाज बनाने में लगे हैं। प्रांत, राष्ट्र या विश्व को जोड़ने में लगे हैं। आदमी टूट रहा है। यदि आदमी बन जाए तो समाज स्वयं बन जाएगा, संसार बन जाएगा।

अरस्तू जिन्दा तो सिकन्दर हजारों

उफनता हुआ नद मार्ग में था। तट पर महान ग्रीक दार्शनिक अरस्तू और भावी विश्वविजय के स्वप्न संजोए सिकंदर खड़ा था। नद को तैर कर पार जाना था - अपनी अगली यात्रा पर।

दोनों के मन में, नद के उफान में मृत्यु का अंदेशा था - अतः गुरु चाहता था - मैं आगे तैरकर थाह लूं - जिससे मेरा प्रिय शिष्य रक्षित रहे। पर, सिकंदर एक सच्चे शिष्य की तरह अड़ा खड़ा था और वह ख़तरे को वरण करने को तैयार था और चाहता था - गुरु तभी नद में पैर रखें, जब सुरक्षा का पूरा विश्वास हो।

दोनों में प्रेमपूर्ण तक़रार थोड़ी देर होती रही। अंत में सिकंदर के आग्रह के सामने अरस्तू को हार माननी पड़ी। सिकंदर आगे तैरता गया और गुरु को पीछे-पीछे निरापद प्रवाह से तैराता सकुशल नद के दूसरी ओर ले आया।

अरस्तू - 'प्रिय सिकंदर, तुम युवक हो, अभी तुम्हारे सामने भावी जीवन की, एक शासक की रंगीन संभावनाएँ हैं, फिर भी तुमने अपने को खतरे में क्यों डाला ? मेरा क्या - मैं वृद्ध......... !

सिकंदर ने पूरी बात को कहने नहीं दिया और एक ऐसा उत्तर दिया, जो इतिहास में अपने ढंग का अनूठा है।

'गुरुदेव! अरस्तू यदि जिंदा रहता है तो उनके द्वारा हजारों सिकंदर बनाए जा सकते हैं, पर कोई भी सिकंदर एक भी अरस्तू नहीं बना सकता।'

आदमी बुनियादी तौर से भला है

एक हिरण शिकारी के जाल में फंस गया। उसने शिकारी से कहा, 'मुझे हिरणी की और दो शावकों की याद आती है, आप मुझे छोड़ दें, मैं एक बार प्यार कर, उन्हें देखकर लौट आऊँगा। इतनी कृपा करें। मैं प्रतिश्रुत (वचनबद्ध) होता हूँ, वापस आने के लिए।' शिकारी स्तब्ध था, वह मनुष्यों की प्रतिज्ञा की विडंबना से परिचित था, पर इस बार पता नहीं क्यों वह मृग की भोली चितवन का शिकार हो गया। उसने कहा - 'अच्छा, शाम तक लौट आना, आज पशुजगत् की प्रतिज्ञा को भी देख लिया जाए।'

वह शिकारी बिल्ववृक्ष की शाखा पर बैठ गया। वह कौतूहलवश बिल्व पत्रों को तोड़ता रहा, नीचे डालता रहा। नीचे शिवलिंग था - अनजानी पूजा होती रही। प्रतीक्षा करता रहा - शाम को वह शिकारी देखता है कि वह हिरण अपनी हिरणी और दो शावकों के साथ आ रहा है। हिरण ने कहा, 'हम चारों हाजि र हैं। हिरणी ने मुझे कहा कि जब आप नहीं तो मैं अकेली जीकर क्या करूँगी और दोनों बच्चे भी हमारे बिना रहने को तैयार नहीं हुए। आपने जो मुझे मिलने का अवसर दिया, उसके लिए हमारा परिवार कृतज्ञ है और हम चारों आपकी सेवा में हैं।'

शिकारी क्रूर था, पशुवध उसका व्यवसाय था, पर आज इस पारिवारिक दृश्य को देखकर उसे अचानक अपनी पत्नी और बच्चों की याद आई, उसकी मनुष्यता जाग उठी। वह बदल गया, शिकारी नहीं - इंसान बनकर बोला - 'जाओ, आज तुम सब मुक्त हो।' वह अपनी आंखों को तरलित करता हुआ घर के प्यार में डूबा चल पड़ा।

क़फ़स के सामने बर्क कुछ इस तरह चमकी
कि नजर में घिर गई तस्वीर आशियाने की।

सचमुच, आदमी बुनियादी तौर से भला है, इंसान है। हृदय परिवर्तन भी जीवन का एक यथार्थबोध है।

समाज सुधार का कटीला पथ

परमहंस प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं। दो नवयुवक आकर अभिवादन करते हैं। परमहंस मुस्कराते हैं, अपने हाथ से दो पुष्प देते हैं।

युवक - 'प्रभो! हम समाज सुधार के काम में लगना चाहते हैं, अतः आप बताइए हम समाज सुधार के कार्य कैसे करें, क्या करें और कहाँ करें ?

परमहंस - 'यानी तुम दोनों भोजन परोसने वाले बनना चाहते हो। पहले, यह बताओ यदि भोजन बढ़िया बना हो और परोसने वाले का हाथ गंदा हो तो वह भोजन करने वाले के लिए कैसा रहेगा?'

युवक - 'गंदे हाथों से परोसे जाने पर अच्छा भोजन भी खराब हो जाएगा। भोजन करने वालों के लिए तो वह जहर ही बनेगा।'

परमहंस - 'बहुत अच्छा उत्तर दिया। बताओ, तुम्हारे हाथ गंदे हैं या स्वच्छ हैं ?'

युवक - 'हम समझे नहीं।'

परमहंस - 'भैया, समाज सुधार का काम सोच समझकर करने का है। जैसे परोसने वाले को पहले अपने को स्वच्छ बनना पड़ता है, हाथों को निर्मल बनाना पड़ता है। उसी प्रकार समाज सुधारक बनने वाले को पहले अपना सुधार करना पड़ता है। हृदय निर्मल हो, यश की आकांक्षा न हो, अहंकार न हो, प्रेम हो, त्याग की भावना हो - पहले जाओ तैयारी करो, आत्म-सुधार की।' युवकों को अब पता चला समाज सुधार का पथ कटीला है। पहले आत्मसुधार, यही वह दृढ़ भूमिका है जहाँ से समाज सुधार का शुभारंभ होता है। इस दृढ़ भूमिका के बिना समाज सुधार के सारे प्रयत्न मृगमरीचिका मात्र हैं।

आओ, बैठकर दुबारा तैयार करें

चीन के बादशाह का मंत्री शाहचांग बहुत थक गया था, पर उसे सुबह बादशाह को पूरी रिपोर्ट लिखवा कर देनी थी। इसलिए वह रात को जागकर सहायक से लिखाता रहा। आधी रात तक वह विवरण तैयार हो गया। मंत्री अपने शयनकक्ष की ओर जाने लगा। इतने में उसका सहायक भी उठा। पर, अचानक उसका पैर लैंप से टकरा गया। लैंप गिर पड़ा। कागज तेल से तर हो गए और जल गए। अब सहायक को 'काटो तो खून नहीं।'

मंत्री यह देखकर मुड़ा और शांत भाव से कहने लगा - 'इसमें आपका कोई दोष नहीं। अच्छा आओ, हम बैठकर दुबारा तैयार करें।' मंत्री धैर्य के साथ उत्साह भर कर आसन पर जग गया और इधर उधर कागजों को टटोल कर रिपोर्ट लिखने लगा - जैसे कुछ हुआ ही न हो।

अपने सहायकों के प्रति ऐसी प्रेम भरी सहिष्णुता जहाँ हो, वहाँ सभी कार्य निष्पक्ष होंगे ही।

मैं सन्त हूँ - मेरा धर्म है, क्षमा

एक राज्य में असंतोष, शिकायतें, गड़बड़ और घोटालों की भरमार। शासक किंकर्त्तव्यविमूढ़! एक दिन उसने नगर के एक त्यागी संत को बुलाया और कहा - 'महात्मन्! भ्रष्टाचार और पापाचरण से छुटकारा कैसे हो ? संत ने कहा - 'राजन् ! मुझे एक सप्ताह तक शासन सौंप दें, फिर सब ठीक-ठाक हो जाएगा।'

शासक ने घोषणा कर दी कि एक सप्ताह तक शासन का संपूर्ण भार संत के ऊपर।

संत ने घोषणा की - 'राज्य में किसी को किसी के प्रति शिकायत हो, निर्भय होकर अर्जी दे; छोटे-बड़े का लिहाज नहीं। शिकायतें आने लगीं। दफ्तर भर गया। गड्ढे खुदवाए और उनमें शिकायतें डाली जाने लगीं। गड्ढे भी भर गए।

पांचवें दिन से न्याय की घोषणा का दिन आया। शिकायत पत्र निकाले जाने लगे।

संत ने जांच कर तुरंत फैसले किए। राजकुमार गिरफ्तार, दस वर्ष की कैद। राजा का साला पकड़ा गया - आजन्म कारावास। दो मंत्री रिश्वत के कारण जेल में डाले गए। अब तो सारे शहर में न्याय की चर्चा होने लगी। सभी जगह चुप्पी, सारे अधिकारी न्यायरीत से आने लगे। राजा भी घबड़ाया।

सातवें दिन - संत ने राजदरबार किया।

'राजन्! मैं संत हूं। न्याय मेरा काम नहीं, क्षमा मेरा धर्म है। मैंने इन अपराधियों को राजनीति के कारण दंड दिया और संत के रूप में क्षमा करता हूँ।'

संत ने पूछा - क़िसी को कोई शिकायत है ? शिकायतों की अर्जियों को वापस लेने को सभी तैयार हो गए।

न्याय सीधा हो, अंधा हो, बहरा हो - फिर सुख शान्ति।

माँ के कदमों में जन्नत

एक लड़का था। उसकी आदत थी कि वह अपने साथियों के साथ जाने के पहले अपनी माँ के पाँव चूमता था। एक दिन उसके आने में देर हो गई। उसके साथियों ने देर से आने का कारण पूछा। लड़के ने कहा- 'मैं जन्नत (स्वर्ग) के बाग की सैर कर रहा था।' साथियों ने व्यंग्य से कहा- 'जन्नत? कहीं दोजख तो नहीं।' लड़का गंभीर होकर कहने लगा- 'हां, जन्नत! मैंने सुना है- जन्नत माँ के कदमों में लोटता है।'

कहते हैं, जब मूसा ने भगवान् से बातचीत की तो भगवान् ने 3500 शब्द कहे। बातचीत के अंत में मूसा ने कहा- 'भगवन् कोई याद रखने वाली अब सार बात बतावें।' भगवान्- 'मूसा, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि अपनी माँ के साथ अच्छा व्यवहार करना।' ये शब्द सात बार दुहराए गए। मूसा- 'मैं इन शब्दों को याद रखूँगा।'

भगवान्- 'यदि तुम्हारी माँ तुमसे संतुष्ट है तो मैं संतुष्ट हूँ। यदि वह नाराज है तो मैं भी तुमसे नाराज हूँ।

मातृदेवो भव - भारतीय संस्कृति का भी यही अमृत स्वर निनाद है।

श्रम के साथ विश्राम

एक किसान के पुश्तैनी मकान में एक पुरानी घड़ी रखी थी। वह 150 वर्षों से बड़ी ईमानदारी से अपनी टिक्-टिक् सुनाती आ रही थी। प्रतिदिन किसान प्रभात होते ही अपनी घड़ी के पास जाकर देखता कि वह ठीक समय दे रही है या नहीं। वह किसान अपना काम ठीक समय पर सही ढंग से करता।

एक दिन ज्यों ही किसान अपने कमरे में घुसा, घड़ी बोल उठी- 'मुझे लगातार काम करते और ठीक समय देते डेढ़ शताब्दी बीत गई है, मैं अब थक गई हूँ। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि मैं अब विश्राम करूँ और टिक्-टिक् करना बंद कर दूँ।

चतुर किसान ने उत्तर दिया 'पर, मेरी अच्छी घड़ी, तुम्हारी मांग उचित नहीं। तुम शायद भूल गई हो कि प्रत्येक टिक्-टिक् में तुम्हें एक सेकंड का विश्राम मिल जाता है।'

घड़ी ने एक क्षण सोचा और सदा की भाँति अपना काम प्रारंभ कर दिया।

इसका मतलब यह है कि व्यवस्थित कार्य में थकावट है पर साथ ही विश्राम भी बराबर है। श्रम के साथ विश्राम, विश्राम के साथ श्रम यही नियमित जीवन की विशेषता है।

किसी के काम आओ

कोरा भोगी क्या देगा? पर, कोरा योगी भी क्या देगा? कोरे ध्यानी, कोरे ज्ञानी - चाहे व्यक्ति स्तर से कितने ही बड़े हों, समाज के स्तर पर उनका क्या मूल्य और महत्त्व है।

'उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय।'

सागर बहुत बड़ा है, पानी का खजाना है, पर - वहाँ प्यासा यदि चला जावे तो उसकी प्यास नहीं बुझेगी।

कोई कितना ही बड़ा हो, वह किसी के काम न आवे तो वह दो कौड़ी का।

एक छोटा-सा पोखर है, कीचड़ भी है, थोड़ा-सा पानी है। प्यासे परिंदे वहाँ जाते हैं, उनकी प्यास वहाँ बुझती है, वे अपनी प्यास बुझाकर पंखों को फैलाकर - अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए - अपने घोंसले की ओर उड़ जाते हैं।

कविवर रहीम ने ऐसे 'पंक जल' की (कीचड़ वाले जल की) महत्ता आंकी है। वे गद्गद स्वरों में कहते हैं - 'धन्य! धन्य है- 'यह प्यास बुझाने वाला जल।'

धनि 'रहीम' जलपंक को, लघु जिय पियत अघाय।

छोटे-छोटे जीव जंतु जहाँ तृप्ति का अनुभव कर, अघा कर पानी पीते हैं - वह कीचड़ वाला थोड़ा सा जल भी धन्य है।

कोई चाहे कैसा भी हो, लोगों की दृष्टि में तुच्छ हो, नगण्य हो- यदि वह किसी के काम आता है तो उसका जीवन सार्थक है, धन्य है। चाहे वह अखबारी सुर्खियों में न चर्चित हो, न अर्चित हो।

जहाँ चाह, वहाँ राह

एक राजा था। न्यायी था और उससे भी अधिक दयालु। वह कहता था- न्याय करना मनुष्य का धर्म है, पर दया करना भगवान् का। उस राजा को जहाँ से भी फरियाद सुनाई देती, कहीं भी जरूरतमंद दुखी दिखाई देते, वह वहाँ तुरन्त सहायता पहुँचाता।

एक बार ऐसा हुआ कि राजा की श्रवण शक्ति जाती रही। वह बहरा हो गया। जैसे ही वह बहरा हुआ कि रोने लगा। राज्याधिकारी एकत्र हुए और सहानुभूति दिखाने लगे। राजा ने उनसे कहा- 'मैं बहरा हो गया हूँ, इसलिए नहीं रो रहा हूँ। मैं इसलिए नहीं रो रहा हूँ कि मुझे चिड़ियों का कलरव सुनाई नहीं देगा या गायन के स्वर मुझे मोहेंगे नहीं। पर, मेरे रोने का मुख्य कारण यह है कि मैं अब दुखी पीड़ित प्रजाजन के आर्तनाद को न सुन पाऊँगा और उनकी सहायता न कर सकूँगा।' राज्याधिकारी लिख-लिखकर राजा को आश्वासन दे रहे थे। पर, राजा पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

फिर अचानक राजा खिलखिलाकर हंसने लगा और कहने लगा- 'प्रभु बहुत दयालु हैं। अब चिंता गई। मुझे एक उपाय सूझ गया है। आप लोग राज्य भर में मुनादी पिटवा दें कि अब से कोई व्यक्ति लाल कपड़े नहीं पहने, क्योंकि लाल कपड़े वे ही लोग

पहनें, जो दुखी, पीड़ित और जरूरतमंद हों। अब लाल कपड़े-प्रार्थना पत्र बनेंगे, जिनको देखकर और इस रूप में उनकी फरियाद सुनकर, उनके दुःखों को दूर कर सकूँगा।'

यानी जहाँ चाह, वहाँ राह।

सच्चा आत्मसम्मान

शरीर एक और अखंड है। शरीर के किसी भी अंग में पीड़ा का बोध हुआ; हाथ तुरंत सहलाने, सहयोग देने के लिए तैयार। पैर में कांटा चुभा, हाथ वहाँ पहुँचकर काँटा निकालने के लिए तत्पर, आँखें सभी मनोरम दृश्य देखना भूलकर, कांटे की तलाश करने में लग जाती हैं। यदि घाव है तो सारा शरीर देखने, चखने, सूँघने और मजेदार बातें करना बंद कर घाव को भरने में एकजुट।

समाज और राष्ट्र भी ऐसी ही इकाई हैं - जो बाहरी भेदों की विविधता में - भीतर अभेद की रसधारा लिए है।

मुखिया मुख - सो चाहिए, खान-पान को एक
पालै पोषै सकल अंग, 'तुलसी' सहित विवेक।

निःसंदेह मुख खाता है; पर, तुरंत उदर में पहुँचा देता है; जहाँ से विवेक के साथ सभी अंग-प्रत्यंगों का समभाव से पालन-पोषण होता है।

पर, हम घोषणा करते हैं- हम किसानों के लिए हैं हम मजदूरों के लिए हैं, हम व्यवसाय उद्योग के पक्षधर हैं, हम छिपे तौर पर कभी कोई भाषा, कभी किसी जाति, कभी किसी संप्रदाय के भावों को उकसाते अपनी रोटी सेंकने में लग जाते हैं।

चाहे सिद्धांत हो, चाहे वाद हो या मुद्दा हो - सवाल तो संपूर्ण राष्ट्र का है। कविर्मनीषी 'प्रसाद' मानो पूछ रहे हैं - 'चाणक्य के रूप में' - 'तुम मालव हो और यह मागध, यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परंतु आत्मसम्मान इतने से संतुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम समस्त आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा।'

मित्रता का आदर्श

सिसली के राजा ने एक सामान्य अपराध पर डेमन को फांसी की आज्ञा दे दी। डेमन ने प्रार्थना की- 'मुझे एक वर्ष का समय दे दिया जाए। मैं ग्रीस जाकर अपनी संपत्ति और परिवार का ठीक प्रबंध करके आ जाऊं।' राजा- 'तुम्हें केवल एक शर्त पर छोड़ा जा

सकता है। कोई तुम्हारी जमानत ले और वचन दे कि यदि तुम लौट कर न आओ तो तुम्हारे स्थान पर वह फांसी पर चढ़े।'

राजा के निर्णय को सुनकर डेमन का पक्का दोस्त पीथियस तैयार हो गया। इससे डेमन चला गया।

पीथियस चाहता था- 'मेरा मित्र किसी समुद्री तूफान के कारण न आ सके और मुझे मित्र के लिए प्राण देने का सौभाग्य मिल सके।'

साल बीत गया। पीथियस को फांसी का हुक्म हुआ। उसे पकड़ कर वध-स्थान पर ले जाया गया। वह प्रसन्न था। इतने में एक नौजवान दौड़ता हांफता आया। दूर से चिल्लाया- 'मैं डेमन हूँ। मेरे मित्र को फांसी मत दो। मैं आ गया।' डेमन चला तो था समय से ही, पर बीच में तूफान आ गया।

मुश्किल से सागर किनारे पहुँचा। वहाँ से सवारी मिली- दौड़ा भागा। अंत में एक घोड़े को तेज दौड़ाता आया। आते ही घोड़ा मर गया। वह भूखा रहा, पैरों में छाले। पर उसके चेहरे पर खुशी की चमक थी। उसके मित्र ने इतना ही कहा- 'काश! थोड़ी देरी कर देते।' दोनों गले मिले। प्रेमाश्रुओं से भीग गए।

इस दृश्य से राजा प्रभावित हुआ। उसने फांसी की सजा रद्द कर दी। राजा ने कहा- 'मुझे भी अपना मित्र बनाओ।' इस प्रकार दो से तीन मित्र बन गए।

कभी-कभी इतिहास कहानी से अधिक रोचक, मोहक और प्रेरक होता है।

स्वावलम्बन

ग्रीस में किलेंथिस नामक एक युवक एथेंस के तत्त्ववेत्ता जीनो की पाठशाला में पढ़ता था। किलेंथिस बहुत गरीब था। उसके शरीर पर पूरे कपड़े भी नहीं थे। पर, पाठशाला की प्रतिदिन की फीस नियमित दे देता था। वह पढ़ने में तेज था, इसलिए दूसरे विद्यार्थी ईर्ष्या करते थे। कई लोगों को संदेह था कि वह जो फीस देता है, कहीं से चुरा कर लाता है।

एक बार उसे चोर बतलाकर पकड़वा दिया। मामला अदालत में गया। किलेंथिस ने निर्भयता के साथ हाकिम से कहा - 'मैं चोर नहीं हूँ। निर्दोष हूँ। मुझ पर यह झूठा दोष लगाया गया है।'

गवाह बुलाए गए। पहला गवाह माली था। माली ने कहा- 'यह प्रतिदिन मेरे बगीचे में आकर कुएं से पानी खींचता है। मैं प्रतिदिन मजदूरी में कुछ पैसे देता हूँ।' दूसरी

गवाही थी - एक बुढ़िया की। उसने कहा - 'मेरे घर में कोई पीसने वाला नहीं है। यह युवक प्रतिदिन मेरे घर में आटा पीसता है। बदले में मजदूरी के पैसे ले जाता है।'

इस नेक कमाई की बात सुनकर हाकिम बहुत प्रसन्न हुआ और पढ़ाई की सारी व्यवस्था के लिए सहायता देनी चाही। पर, वह छात्र तैयार नहीं हुआ। कहने लगा- 'धन्यवाद! आपकी उदारता के लिए। मैं परिश्रम करके ही पढ़ना चाहता हूँ। किसी से दान लेने की मुझे आवश्यकता नहीं है।'

स्वावलंबन के इस आदर्श से हम क्या कुछ सीख सकते हैं ? शायद 'हाँ'। पर, अभी नहीं - क्योंकि अभी तो हम सहायता को - प्रायः कर्ज को - लाभ समझकर 'स्वावलम्बन' को बिसर गए हैं।

क्षण को पकड़ो

सिपाही सूखे नाले पर बनी सराय में रुके थे। सुबह होने को आयी। आकाशवाणी हुई- 'सूखे नाले को थोड़ा खोदो, नीचे पत्थर मिलेंगे, ले लो। इस काम से तुम्हें सुख भी मिलेगा और दुख भी।' अनोखी आवाज सुनकर, सिपाही समझ नहीं पाए, लगा जैसे किसी पागल का प्रलाप है। दो-तीन सिपाही नाले के पास गए, थोड़ा खोदा और पत्थरों के दो-चार टुकड़े ले आए। अपनी गठरी में रख-आगे चल पड़े।

दोपहर के समय सिपाही विश्राम के लिए रुके। जब सिपाहियों ने अपना सामान रखा और अपनी गठरियाँ खोली तो जो सिपाही अपनी गठरियों में पत्थर के टुकड़े रखकर लाए थे, वे टुकड़े हीरे निकले। उन्हें सुख मिला-क्योंकि कुछ मिला, उन्हें दुख हुआ-क्यों नहीं, गठरी भर लाये।

यह मिथक है, जो आज तक अटूट है। जब हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो लगता है, समय का थोड़ा तो सदुपयोग किया और खोया भी बहुत। काश, उस समय होश में रहते और एक-एक क्षण को सम्यक् प्रकार से जीते।

यह सुख व्यर्थ, यह दुख व्यर्थ। होना चाहिए- **'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेय।'**

स्मरण रहे, भूत गया, वह गया, भविष्य-अभी पैदा ही नहीं हुआ। मेरे पास, आज है, ना! अभी है, ना! बस-दौड़ता फिसलता-क्षण है! यह क्षण ही मेरा है। क्षण की यदि हम फिक्र करें तो यही क्षण-घंटों की, दिनों की, वर्षों की खुद फिक्र कर लेगा।

बूंद गई तो सागर गया। कण गया तो धरती गई, क्षण गया तो अनंत काल गया। अर्हत् वाणी है -

'हे गौतम! एक क्षण भी प्रमाद न कर।'

'समयं गोयम! मा पमायए।'

महर्षि पतञ्जलि विद्या मन्दिर-गंगागुरुकुलम्

किसी भी समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में वहाँ की शिक्षण संस्थाओं का अद्वितीय योगदान होता है। भारत में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जनसंख्या तथा नागरिकों में अपने पाल्यों को उत्तम से उत्तम और उच्च से उच्च स्तर तक शिक्षा दिलाने की तीव्र अभिलाषा के फलस्वरूप देश के लगभग सभी अंचलों में प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालयी स्तर तक के निरन्तर नये विद्यालयों/संस्थाओं की स्थापना करना एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई है जिसे मात्र शासकीय प्रयास द्वारा पूरा कर पाना असम्भव है। स्ववित्तपोषित अशासकीय संगठनों, जनसेवी संस्थाओं आदि को इस राष्ट्र नियामक पुनीत कार्य में अग्रसर होकर अभीष्ट योगदान करना चाहिए।

स्वर्गीय लोकमणि लाल जी ने, जो कि स्वतन्त्रतापूर्व से ही राष्ट्र निर्माणकारी कार्य में पूर्ण संलग्न थे, शिक्षण संस्थाओं के महत्व को स्वीकार करते हुए महर्षि पतञ्जलि विद्या मन्दिर समिति का गठन किया। उसी नाम के विद्यालय की प्रयाग में गंगा के निकट स्थापना की और अल्प अवधि में ही आज यह विद्यालय न केवल इलाहाबाद का अपितु उत्तर प्रदेश के एक आदर्श विद्यालय के रूप में सुविख्यात हो चुका है। इतना ही नहीं सुदूर प्रान्तों से भी इस संस्था में प्रवेश हेतु शिक्षार्थी आने लगे हैं। वर्तमान स्थिति यह है कि इस विद्यालय में कक्षा एक के अतिरिक्त अन्य किसी भी कक्षा में किसी नये विद्यार्थी को प्रवेश दे पाना लगभग असम्भव सा हो गया है।

उक्त विषम स्थिति से त्राण पाने तथा उत्तम श्रेणी के नये विद्यालयों को स्थापित करने की अनिवार्य आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए विद्यालय समिति ने महर्षि पतञ्जलि विद्या मंदिर-गंगागुरुकुलम नामक एक नया माध्यमिक विद्यालय पतित पावनी गंगा के उत्तर इलाहाबाद लखनऊ राजमार्ग के दक्षिण में लगभग आधा किलोमीटर दूर ग्राम गद्दोपुर, फाफामऊ में वर्ष 2002-03 में स्थापित किया। इस विद्यालय के नाम में **'गंगागुरुकुलम'** शब्द जोड़ने के पीछे एक अत्यन्त प्रासंगिक एवं पुनीत अवधारणा है

जिसके सम्बन्ध में संक्षेप में प्रकाश डालना अपेक्षित है, जिससे शिक्षकों, शिक्षार्थियों और उनके अभिभावकों तथा अन्य समस्त शिक्षा एवं राष्ट्रप्रेमी नागरिकों के मन में विद्यालय के प्रति अपेक्षित श्रद्धा एवं सद्भाव जाग्रत हो सके।

यह सर्वविदित है कि भारत आदिकाल से सभ्यता एवं संस्कृति में एक अग्रगण्य देश रहा है। यहाँ पर प्रारम्भ से ही चार पुरुषार्थों पर बल दिया जाता रहा है। ये पुरुषार्थ हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म की परिभाषा करते हुए कहा गया है - ***''यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।''*** अर्थात् जिसके अनुपालन से व्यक्ति का अभ्युदय हो और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है।

धर्म के लक्षण क्या हैं?

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशमं धर्म लक्षणम् ।।

अर्थात् धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रिय निग्रहण, सद्बुद्धि, विद्या, सत्य भाषण तथा क्रोध न करना - ये धार्मिक व्यक्ति के लक्षण हैं।

विद्या शब्द स्वयं में अत्यन्त व्यापक अर्थ रखता है। ***'सा विद्या या विमुक्तये।'*** अर्थात् विद्या वह है जो कि व्यक्ति को संकीर्णताओं, स्वार्थ, अहंकार, दम्भ, हिंसा, क्रोध आदि से मुक्त करे, दुश्चिन्ताओं से दूर रखे, जो परहित, सद्भाव, प्रेम, दया और करुणा से ओतप्रोत करे, जो सामाजिक दायित्वबोध, कर्तव्यपरायणता तथा चारित्रिक दृढ़ता, विनम्रता तथा सबमें ईश्वर के दर्शन करना, वासुदेवं सर्वम् इति, की प्रत्यक्ष अनुभूति करना आदि मानवोचित उदात्त गुणों से संयुक्त एवं सम्पुट करे। अस्तु धर्मानुपालन व्यक्ति को श्रेष्ठ बनाता है।

जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अर्थोपार्जन तथा उसका सदुपयोग करना दूसरा अनिवार्य पुरुषार्थ है। अर्थोपार्जन भी सन्मार्ग द्वारा होना चाहिए। हमें आदि गुरु शंकराचार्य का निम्नलिखित गीत सदैव स्मरण रखना चाहिए :

मूढ़ जहीहि धनागमतृष्णां ।
कुरुसदबुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।।
यल्लभसे निजकर्मोपातं ।
वित्तं तेन विनोदय चिन्तम् ।।

अर्थात् हे मूर्ख! धन प्राप्ति की तृष्णा छोड़ो। अपने मन में वासनाओं से रहित अच्छे विचार उत्पन्न करो। सत्कर्मों से उपार्जित धन के द्वारा ही अपने चित्त को प्रसन्न रखो अर्थात् परम सन्तोष धारण करो।

पैसे का लोभ कष्टकारक है, धन संग्रह का लोभ बुद्धि को नष्ट कर देता है, यह एक रोग है। आज के युग में 'ऊपरी आमदनी' का मोह बढ़ता जा रहा है। इस कलंक से मुक्त होना अति आवश्यक है। परिश्रम पूर्वक न्यायोचित ढंग से अर्जित धन में ही सन्तोष करना हमारा धर्म है।

तृतीय पुरुषार्थ काम है - जिसका अभिप्राय मात्र अपनी इच्छा की पूर्ति करना नहीं है, वरन् व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं की सही पहचान कर उनकी पूर्ति के लिए प्रयास तथा अभीष्ट योगदान करना। संयमित कामनाएँ तथा उनकी सद्मार्ग द्वारा पूर्ति हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष है। मोक्ष अर्थात् मुक्ति - हर प्रकार की नकारात्मक सोच, प्रवृत्तियों जैसे घृणा, द्वेष, लालच आदि से मुक्त होना, संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठना ही सच्ची मुक्ति है। गीता का निम्नलिखित श्लोक सदैव स्मरण रखें -

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परां बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तुसः ।। (गीता ३:४२)

इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे आत्मा - हमें मन, बुद्धि और शरीर को आत्मनियंत्रित कर अध्यात्म में अनुतिष्ठित होना चाहिए। जीवन एक चुनौती है। दुश्चिन्ताओं से मुक्त रहकर, धर्ममार्ग का अनुगमन कर, श्रद्धापूर्वक ईश्वर का सतत् चिन्तन करते हुए जीवन में गतिमान रहें और अन्तिम लक्ष्य - आवागमन से मुक्ति को प्राप्त करें। इसी में जीवन की सार्थकता है। यही पुरुषार्थ है।

उपर्युक्त चार पुरुषार्थों की सम्प्राप्ति हेतु मनुष्य जाति के लिए चार आश्रमों की संकल्पना की गई है। ये हैं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। मानव जीव की सामान्य अवधि शतवर्ष मानकर प्रथम 25 वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम, 26 से 50 वर्ष गृहस्थ आश्रम, 50 से 75 वर्ष वानप्रस्थाश्रम तथा 75 से आगे संन्यासाश्रम निर्धारित किये गये।

किसी भी व्यक्ति के प्रारंभिक 25 वर्ष उसके भावी जीवन की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम की अवधि किसी गुरु की छत्रछाया में व्यतीत की जाती है।

प्राचीन काल में मानवजाति को गुण और कर्म के आधार पर चार वर्णों में बाँटा गया था। ये हैं - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। प्रत्येक वर्ण की अपनी विशेषताएँ थीं। गीता के निम्नलिखित श्लोक इनके सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालते हैं -

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।। (गीता १८:४१)

शम अर्थात् मन की शान्ति, दम अर्थात् इन्द्रियों का निग्रह, तपस्या, शौच (पवित्रता), क्षमाशीलता, वाणी में सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य (ईश्वर में विश्वास) - ये नौ गुण जिनमें स्वभाव से विद्यमान हों वे ब्रह्मकर्म अर्थात् ब्राह्मण के सहज स्वभाव प्रकट करते हैं।

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलापनम् ।
दानमीश्वरश्च क्षात्रं कर्मस्वभावजम् ।। (गीता १८:४२)

शूरता, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध से अपलायन, दान और ईश्वर भाव - ये स्वाभाविक क्षत्रिय कर्म हैं।

कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापिस्वभावजम् ।। (गीता १८:४३)

कृषि, गोपालन, वाणिज्य वैश्य के कर्म तथा परिचर्या जिसका स्वभाव हो, शूद्र - कर्म कहा गया है। ध्यान देने की बात है कि कोई कर्म न छोटा है, न बड़ा, जो भी कर्म किया जाय पूर्ण निष्ठा के साथ सम्पन्न करना चाहिए।

स्पष्टतः उक्त विभाजन स्वभावजन्य गुणों एवं कर्मों पर आधारित है। यदि गुणों पर ध्यान दें तो ब्रह्म कर्म में सात्विक गुण, क्षत्रिय कर्म में सत्व उपसर्जन है, रजोगुण प्रधान है, वैश्य में रजोगुण की प्रधानता होती है, तमस उपसर्जन है, जबकि शूद्र में तमस गुण की प्रधानता है, रजोगुण का उपसर्जन होता है। उक्त काल में ब्राह्मणों का प्रधान दायित्व था - अध्ययन और अध्यापन, यज्ञ करना, यज्ञ कराना आदि। इस दायित्व के निर्वहन हेतु वे समाज से दूर एकान्त में रहते थे। समाज के सभी लोग अपनी सन्तानों को बाल्यावस्था से उन आश्रमों में ले जाकर उन्हें सौंप देते थे और स्वयं उनके भोजन आदि की व्यवस्था हेतु अभीष्ट योगदान करते थे। राजा-महाराजा के पुत्र भी इन्हीं स्थानों पर रहकर ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करते। लगभग 25 वर्ष की आयु तक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक

एवं आध्यात्मिक साधना तथा भावी जीवन की पूर्ण तैयारी करके ही वे गृहस्थ जीवन में प्रवेश लेते थे। प्रायः पिता के वृद्ध होने पर उनके सुयोग्य पुत्र अथवा शिष्यगण अध्ययन-अध्यापन का दायित्व ग्रहण करते। इस प्रकार वह स्थान गुरुकुल के रूप में प्रतिष्ठित रहता। गुरु शिष्य का एक प्रकार से माता-पिता, बन्धु-सखा सब कुछ होता था। विद्यार्थी बड़े आनन्द से भाव-विभोर होकर गुरु की निम्नलिखित स्तुति का पाठ करता -

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुः च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वम् मम् देव देव ।।

गुरु भी निष्पक्ष सभी को उनकी योग्यताओं, क्षमताओं और आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर समुन्नत जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्म साक्षात्कार तक के लिए पूर्ण दक्ष बनाने हेतु दिशा निर्देशन करते, और उसी में उन्हें सुख, शान्ति और सन्तोष प्राप्त होता।

विद्यार्थी उनकी स्तुति में कहता :

ब्रह्मानन्दं परम् सुखदं केवलं ज्ञान मूर्ति ।
द्वन्दातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादि लक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षिभूतं ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्‌गुरु तं नमामि ।।

अर्थात् मैं उस महान शिक्षक को प्रणाम करता हूँ जो ब्रह्मानन्द स्वरूप हैं, जो परमानन्द प्रदान करता है, जो निरपेक्ष है तथा ज्ञान स्वरूप हैं; जो द्वन्द्व से परे हैं, आकाश के सामान सर्वत्र विराजमान हैं, जो *'तत् त्वम असि'* द्वारा संबोधित किया जाता है, जो एक है, नित्य (शाश्वत) है, पवित्र और अचल है, जो समस्त विचारों का साक्षी है, जिसे शब्दों द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है तथा त्रिगुण - सत्व, रज और तम से परे है।

ऐसी मान्यता है कि उक्त श्लोक मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने अपने पूज्य गुरु स्वामी वशिष्ठ के लिए लिखा था।

ऐसे ही गुरुकुल की संकल्पना लेकर महर्षि पतञ्जलि विद्या मन्दिर समिति ने गंगा के पावन तट से लगभग एक किमी दूरी पर प्रशान्त वातावरण में नव विद्यालय भवन का निर्माण कराया है, जिसके चारों ओर हरे-भरे खेत और बाग-बगीचे हैं। माध्यमिक स्तर

तक की उत्तमोत्तम शिक्षा के साथ-साथ छात्र-छात्राओं में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास कर उच्चतर अध्ययन एवं राष्ट्र निर्माण में सक्रिय योगदान करने हेतु पूर्ण समर्थ बनाया जायेगा। एक दिन यह संस्था प्राचीन भारत के गरिमामय गुरुकुलों की भाँति उत्तर भारत के एक प्रतिष्ठित गुरुकुल के रूप में सुविख्यात होगा।

गंगागुरुकुलम् के छात्र-सदन

गंगागुरुकुलम के छात्र-छात्राओं को चार सदनों (हाउसों) में बाँटा गया है। इन सदनों के नाम तथा संगत हाउस कलर निम्नवत् हैं :

1. अरविन्द सदन - हरा
2. बुद्ध सदन - नीला
3. चिन्मय सदन - लाल
4. योगानन्द सदन - पीला

प्रत्येक शनिवार उक्त सदनों के छात्र-छात्राएँ अपने-अपने सदनों के संगत रंगों की 'टी शर्ट' पहनते हैं। जब प्रतियोगिताएँ होती हैं तो प्रत्येक समूह अपने सदन के संगत रंग के ध्वज के साथ प्रतियोगिता स्थल पर उपस्थित होता है।

श्री अरविन्द

श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त, 1872 में कलकत्ता में हुआ था। उनकी माता का नाम स्वर्णलता और पिता का नाम डॉ० कृष्णधन घोष था। डॉ० घोष ने इंग्लैण्ड में एबर्डीन विश्वविद्यालय से चिकित्साशास्त्र में एम०डी० की उपाधि प्राप्त की थी। वे रहन-सहन, बात-व्यवहार, विचार-आदर्श सबमें पाश्चात्य सभ्यता के पूर्ण पुजारी थे। परिणामतः उन्होंने अपने बच्चों को अंग्रेजी शिक्षा दिलाने तथा भारतीय प्रभाव से मुक्त रखने का निश्चय कर अरविन्द को 1877 में मात्र पाँच वर्ष की आयु में उनके दो बड़े भाइयों के साथ लॉरेण्टो कान्वेन्ट स्कूल, दार्जिलिंग में प्रवेश कराया। अरविन्द बचपन से ही बड़े होनहार थे। उनके एक अध्यापक ने लिखा है, ''हम अक्सर इस लड़के को अपनी गहरी टुकुर-टुकुर देखती आँखों के साथ गम्भीर और विचारमग्न अवस्था में देखते, मानों वह विदेशी लड़कों के समूह के बीच घूमते हुए अपने भावी जीवन को देख रहा हो, कभी प्रकृति की सुन्दरता को निहारता, स्वभाव से कोमल और मधुर, यह स्वच्छ हृदयवाला लड़का स्कूल का गौरव

था।" उनके पिता ने सन् 1879 में मात्र 7 वर्ष की आयु में इंग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्त करने हेतु मैनचेस्टर में रिवरैंड डब्लू०एच० डुएट और उनकी माँ को सौंप दिया और यह निर्देश दिया कि यह बच्चा किसी भारतीय से न मिलने पाये। श्री डुएट ने अंग्रेजी तथा लैटिन भाषाएँ और श्रीमती डुएट ने इतिहास, भूगोल, अंकगणित तथा फ्रेंच सिखाया। अरविन्द ने सेण्ट पाल स्कूल में प्रवेश लिया। प्राचीन साहित्य के अध्ययन में अत्यधिक रुचि लेने के कारण उन्हें साहित्य में वटरवर्थ पुरस्कार तथा इतिहास में बेडफोर्ड पुरस्कार प्राप्त हुए। उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली।

अक्टूबर, 1890 में अरविन्द ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के किंग्स कालेज में प्रवेश लिया। उनको उच्च क्लासिकल छात्रवृत्ति मिली और उन्होंने ट्राइपास की उपाधि प्रथम श्रेणी में विशेष सम्मान सहित अर्जित किया तथा ग्रीक और लैटिन में कविताओं के लिए समस्त पुरस्कार प्राप्त किये। छात्रवृत्ति परीक्षा के परीक्षक महान शिक्षाविद् प्रो० आस्कर ब्राउनिंग ने अरविन्द की उत्तरपुस्तिका का मूल्यांकन करने पर उनसे भेंट होने पर कहा था, "तुमने परीक्षा असामान्य रूप से उच्च स्तर में उत्तीर्ण की है। मैं अब तक 13 वर्ष तक इस परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाएँ मूल्यांकित कर चुका हूँ, किन्तु कभी भी तुम्हारे जैसे उत्तर देखने को नहीं मिले। जहाँ तक तुम्हारे निबन्ध की बात है, वह तो अद्भुत ही था।"

यथार्थ में उपर्युक्त कथन मात्र अरविन्द के लिए नहीं वरन् हम सभी भारतीयों के लिए बड़े गर्व की बात है।

वर्ष 1890 में ही अरविन्द भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई०सी०एस०) की परीक्षा में सम्मिलित हुए और उसमें उत्कृष्ट अंक प्राप्त किये, किन्तु वे तत्कालीन विदेशी शासन के एजेण्ट नहीं बनना चाहते थे, इसलिए जान-बूझकर घुड़सवारी की परीक्षा में दुबारा अवसर दिये जाने पर भी सम्मिलित नहीं हुए। परिणामस्वरूप वे आई०सी०एस० के लिए नहीं चयनित हुए।

यहाँ पर यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि अरविन्द हृदय से भारत की स्वतन्त्रता के पक्षधर थे और वे 'भारतीय मजलिस' नामक समिति के सचिव थे। अंग्रेजी शासन के अत्याचार के विरोध में संगठित भारतीयों की एक अन्य उग्रवादी संस्था - "लोटस एण्ड डैगर" के भी सक्रिय सदस्य बन गये थे तथा उसमें कई बार अपने क्रान्तिकारी विचार प्रकट कर चुके थे।

श्री अरविन्द फरवरी, 1893 में भारत लौटे। भारत लौटने के पूर्व ही उनकी भेंट बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ से हो चुकी थी और उनको बड़ौदा राज्य की सेवा के लिए नियुक्ति-पत्र प्राप्त हो चुका था। उन्होंने 8 फरवरी, 1893 को सेवा प्रारम्भ की। वर्ष 1899 तक वे प्रशासनिक सेवा में रहे तथा बड़ौदा राज्य तथा भारत सरकार के बीच पत्र-व्यवहार का कार्य करते। कभी-कभी महाराज द्वारा विभिन्न विशिष्ट अवसरों पर व्याख्यान के लिए भी लेख लिखते। वर्ष 1900 में वे बड़ौदा कालेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर नियुक्त हो गये और 1904 में उपप्राचार्य बने। वे अपने विषय के विद्वान तो थे ही, उनका व्याख्यान सुनकर सभी मंत्रमुग्ध हो उठते थे।

बड़ौदा में श्री अरविन्द ने संस्कृत, मराठी, गुजराती तथा बंगला का स्वयं अध्ययन किया। वे शीघ्र ही मधुसूदन चटर्जी तथा श्री बंकिमचन्द्र के साहित्य, गीता, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों का अध्ययन करने में सक्षम बन गये।

श्री अरविन्द ने लेखन कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। उनके निबन्ध 'इन्दुप्रकाश' में प्रकाशित होने लगे। फिर उन्होंने 'वन्देमातरम्', 'धर्म' एवं 'कर्मयोगी' का स्वयं सम्पादन किया। नवयुवकों में राष्ट्रीयता की प्रबल भावना जगाने में 'वन्देमातरम्' ने प्रमुख भूमिका अदा की। यद्यपि श्री अरविन्द आतंकवाद के विरुद्ध थे, किन्तु भारतीयों पर अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के विरुद्ध सशक्त क्रान्ति का विचार उनके मन में प्रबल था। कलकत्ता की मणिकतल्ला बाटिका में उनका छोटा भाई वरिन्द्र रहता था जो कि नवयुवकों में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अभियान चलाने के लिए प्रशिक्षण देता था। मई 1908 में किसी नवयुवक ने अलीपुर में एक अंग्रेज अधिकारी को लक्ष्य करके एक गाड़ी पर बम फेंका जिसमें दो महिलाओं की मृत्यु हो गयी। सही जाँच किये बिना श्री अरविन्द को 5 मई, 1908 को, यद्यपि वे निर्दोष थे, जेल भेज दिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। कलकत्ता के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर तथा देशभक्त श्री चितरंजन दास ने उनका पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा था, "इस विवाद के शान्त हो जाने के बाद, इस क्रान्ति के बहुत बाद, जब यह आन्दोलन समाप्त हो चुका होगा, इनके निधन के बाद भी लोग इन्हें देशप्रेम के कवि, राष्ट्रीयता के देवदूत और मानवजाति के प्रेमी के रूप में स्मरण करेंगे।"

श्री अरविन्द निर्दोष पाये गये और मुक्त कर दिये गये। उसके बाद श्री अरविन्द ने राजनीति से सन्यास ले लिया और वे 4 अप्रैल 1910 को ब्रिटिश शासन की सीमा के

बाहर फ्रांसीसी उपनिवेश पाण्डुचेरी में जाकर रहने लगे। वहाँ पर उन्होंने आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ सत्साहित्य लेखन का भी कार्य किया। वर्ष 1914 से दार्शनिक मासिक पत्रिका 'आर्य' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जहाँ पर 'वन्देमातरम्' में उनकी सिद्धहस्त लेखनी से विदेशी शासन के प्रति क्रान्ति की ज्वाला उठती थीं वहीं पर 'आर्य' में अमृत की धारा बहती थी जिसे आत्मसात् कर लोग मानवोत्थान के प्रति जागरूक हो एक नये समाज के निर्माण हेतु कटिबद्ध हो उठते।

उन्होंने राष्ट्रीयता, वेदों एवं उपनिषदों की व्याख्या, भगवत्गीता आदि पर अनेक शोध-प्रबन्ध लिखे। 'लाइफडिवाइन', 'सिन्थेसिस ऑफ योग', 'सुपरमैन', 'आइडियल ऑफ ह्यूमनिटी' आदि बृहत ग्रन्थ प्रकाशित किये। 'सावित्री' तो एक अद्वितीय रचना ही है जिसे अंग्रेजी भाषा में महाकाव्य का सम्मान मिला। जिसका लेखन 1899 में प्रारम्भ हुआ और न जाने कितनी बार परिवर्तन-परिवर्द्धन कर वर्ष 1954 में प्रकाशित हो सकी। जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि श्री अरविन्द वैश्व चेतना के उत्तरोत्तर उच्चतर धरातल पर आरोहण करते गये और सावित्री में तदनुसार संशोधन-परिवर्तन होता गया और अन्ततः वह एक अमरकृति के रूप में अवतीर्ण हुई।

श्री अरविन्द विकास की प्रक्रिया में विश्वास करते थे। उनका कहना था, "जो मनुष्य को उच्च और विस्तृत चेतना के स्तर पर पहुँचा दे और उन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ना शुरु कर दे जिन्होंने उसे तबसे संशय और परेशानी में डाल रखा है, जबसे उसने व्यक्तिगत सम्पूर्णता और एक उच्चतर समाज के बारे में सोचना और सपने देखना शुरु किया है।"

उनकी दृष्टि में मनुष्य चरम सत्य नहीं है। उनका मानना था कि इसके ऊपर अतिमानव (सुपरमैन) होगा। वे कहते थे, "जीवन का कोई अन्य स्तर भी अवश्य होगा। मानव के साथ मानसिक शक्ति का युग आया, ऐसी शक्ति जो ऊँचे से ऊँचे पहुँचती गयी और शिखर को छू लिया। अब इस शिखर को पाकर चरम सत्ता को प्राप्त करने का समय आ गया है। एतदर्थ भीतर की संकल्प शक्ति और ईश्वरीय अनुग्रह आवश्यक है।"

अभीप्सा (एस्पिरेशन) पहली शर्त है। वर्तमान सांसारिक जीवन से उच्चतर जीवन प्राप्त करने के लिए इच्छा शक्ति का जगना ईश्वर और गुरु तथा उनके बताये हुए मार्ग पर विश्वास करना, और उसमें दृढ़ता दूसरी शर्त है। अहंभाव के स्थान पर ईश्वर के

प्रति समर्पण भाव। पूर्ण समर्पण (सरेण्डर) - तीसरी अनिवार्य शर्त है। इनका सम्यक अनुपालन करने पर ईश्वर की अनुकम्पा (ग्रेस) सुनिश्चित है।

यद्यपि श्री अरविन्द योग साधना में निमग्न हो गये थे किन्तु बाह्यजगत के प्रति भी वे उतने ही जागरूक थे। द्वितीय विश्व महायुद्ध के समय तानाशाह हिटलर की पराजय, उसके उपरान्त विश्व संगठन (यू०एन०ओ०) तथा भारत की स्वतन्त्रता की भविष्यवाणी वे बहुत पहले कर चुके थे।

15 अगस्त 1947 को प्रथम स्वतन्त्रता दिवस के पावन पर्व पर अपने संदेश में उन्होंने कहा था, "15 अगस्त, 1947 स्वाधीन भारत का जन्मदिवस है। यह दिन भारत के लिए पुराने युग की समाप्ति और नये युग का प्रारम्भ सूचित करता है। परन्तु हम स्वतंत्र राष्ट्र को अपने जीवन और कार्यों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व के लिए एक नये युग का एक महत्वपूर्ण दिन बना सकते हैं जिसे मानवजाति के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भविष्य के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है।"

5 दिसम्बर, 1950 को प्रातः श्री अरविन्द ने देहत्याग दिया। चार दिन तक उनके शरीर से दिव्य अलौकिक आभा प्रस्फुटित होती रही। 9 दिसम्बर, 1950 को उनको समाधि दी गई।

आज पाण्डुचेरी एक तीर्थ स्थल बन चुका है। श्री अरविन्द जिस स्थान पर रहते थे उसे श्री अरविन्द आश्रम के नाम से जाना जाता है और अनेक साधक, जिसमें कुछ विदेशी भी हैं, आध्यात्मिक साधना करने के साथ-साथ श्री अरविन्द के साहित्य एवं दर्शन के प्रचार-प्रसार में संलग्न है। वहाँ पर एक उच्चकोटि की शिक्षण संस्था की भी स्थापना हो चुकी है, जिसमें व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास पर पूर्ण बल दिया जाता है।

श्री अरविन्द मानवजाति के लिए एक अमर प्रेरणास्रोत हैं।

गौतम बुद्ध

गौतम बुद्ध का जन्म हिमालय की तलहटी में स्थित कपिलवस्तु राज्य के लुम्बिनी नामक ग्राम में 563 ई०पू० में हुआ था। उनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। उनकी माता का नाम माया तथा पिता का नाम शुद्धोधन था। शुद्धोधन शाक्य वंश के बड़े प्रतापी राजा थे।

सिद्धार्थ के बचपन में ही उनकी माँ का निधन हो गया। अतः उनका लालन-पालन उनकी मौसी महा प्रजापति गौतमी, जो कि शुद्धोधन की दूसरी पत्नी थीं, ने किया। उनके

पिता भी उन्हें बहुत प्यार करते थे। कहा जाता है कि सिद्धार्थ के जन्म का समाचार सुनकर असित नामक एक वृद्ध सन्यासी राजमहल गये। नवजात शिशु को देखकर उन्होंने भविष्यवाणी की कि यह बालक आगे चलकर एक महात्मा होगा और एक नये धर्म की स्थापना करेगा। इसे सुनकर राजा को प्रसन्नता न हुई क्योंकि वे अपने पुत्र को अपने राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में देख रहे थे। शिशु सिद्धार्थ बहुत ही सुन्दर, सुमधुर और उतना ही बुद्धिमान था। वह एक विशाल राजमहल में जिसके चारों ओर सुन्दर बाग-बगीचे थे, पला और बड़ा हुआ। उसने पढ़ना-लिखना, संगीत, घुड़सवारी, तैराकी, शिकार करना आदि भली-भाँति सीखा। धनुर्विद्या एवं तलवार भाँजने में भी पूर्ण दक्षता प्राप्त की।

किन्तु सिद्धार्थ के अन्तर्मन में एकांतवास से प्रेम, अपार दया और करुणाभाव था। शिकार करना उन्हें बिल्कुल पसंद न था। एक बार अपने बगीचे में एक हंस को तीर से बिधा देखकर वे रो पड़े, उन्होंने उसका तीर स्वयं निकाला और उसकी मरहम पट्टी की।

युवावस्था में उनका विवाह यशोधरा नामक एक सुन्दर युवती से हुआ। ग्रीष्म, वर्षा एवं शरद ऋतुओं में अलग-अलग भव्य भवनों में उनके रहने की व्यवस्था की गयी। वे बड़े आनन्द से गृहस्थ जीवन बिताने लगे। उन्हें एक पुत्र हुआ जिसका नाम राहुल रखा गया।

किन्तु इन सबसे उनके अन्तर्मन को सुख और संतोष न हुआ। वे कुछ और ही चाहते थे। एक दिन वे रथ पर बैठकर नगर की यात्रा करने निकले। मार्ग में उन्होंने एक वृद्ध आदमी को पहली बार देखा। उसकी कमर झुकी हुई थी, एक छड़ी के सहारे वह लुढ़कते-ढुलकते जा रहा था। सिद्धार्थ ने अपने रथ के कोचवान चेन्ना से उसके बारे में पूछा, ''यह कैसा आदमी है? यह कैसे चल रहा है?'' चेन्ना ने कहा, ''यह एक बूढ़ा आदमी है। यही जीवन की प्रक्रिया है। सभी बूढ़े होते हैं।'' यह सुनकर उनके मन में बड़ी दया आयी। साथ ही वे चिन्ता में पड़ गये। इसी प्रकार वे एक दिन रथ पर भ्रमण के लिये निकले। रास्ते में एक अत्यन्त रोगग्रस्त व्यक्ति को देखा। वे उसके दुख से द्रवीभूत हो उठे। कुछ दिनों बाद उन्होंने एक और भी नया दृश्य देखा - कुछ लोग ''राम नाम सत्य है'' कहते हुए एक शव लेकर जा रहे थे। उन्होंने न तो कभी भी किसी की मृत्यु होते हुए देखा था और न शव ही। पूछने पर जब चेन्ना ने यह बताया कि एक दिन सभी की मृत्यु होती है और जीवन का अन्त हो जाता है। तो वे चिन्तामग्न हो उठे।

उपर्युक्त तीनों घटनाओं से उनके मस्तिष्क पर प्रबल आघात पहुँचा। वे सोच में पड़ गये और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मानव जीवन दुख-दर्द से भरा हुआ है। इससे उबरने का मार्ग ढूँढ़ना चाहिए।

एक दिन वे एक गेरुआ वेशधारी सन्यासी के पास गये। यह पूछने पर कि उन्होंने संन्यास क्यों लिया, इसका प्रयोजन क्या है, उन्होंने बताया कि दुखमय जीवन से छुटकारा प्राप्त करने के लक्ष्य से ही उन्होंने संन्यास ग्रहण किया है।

अब सिद्धार्थ के मन में यह चिन्ता उठ खड़ी हुई कि इस दुखमय जीवन से मुक्ति किस प्रकार प्राप्त की जाय। उस समय उनकी उम्र मात्र 29 वर्ष की थी। एक दिन मध्य रात्रि में जब राजमहल के सभी लोग घोर निद्रा में थे, उन्होंने अपने कोचवान को अपने प्रिय घोड़े 'कंथक' को तैयार कर रखने के लिए आदेश दिया और वे अपनी धर्मपत्नी यशोधरा के कक्ष में गये जहाँ वह गहरी नींद में थीं। उसकी बाँह में उसका नवजात शिशु राहुल सो रहा था। मात्र एक दृष्टि डाल कर उन्हें सोता हुआ छोड़कर वे महल से बाहर घोड़े पर सवार होकर जंगल की ओर निकल पड़े। जब अपने पिता के राज्य से बाहर पहुँचे तो अपना राजसी वस्त्र उतार कर चेन्ना को दे दिये। अपने बाल काट लिये और पीत वस्त्र धारण कर मानव जीवन में आनन्द की खोज में निकल पड़े। मार्ग में कई साधु-संन्यासियों से मिले किन्तु उनसे उनको सन्तोष न हुआ। धीरे-धीरे वे गया के निकट उरूवेला नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ पर उन्होंने छः वर्षों तक अनवरत् इतनी साधना की कि उनका शरीर सूखकर अस्थिपंजर मात्र रह गया। किन्तु उनको उस सत्य की प्राप्ति न हुई जिसकी उनको खोज थी। उन्होंने यह अनुभव किया कि मात्र व्रत और उपवास से ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। अब वे भोजन ग्रहण करने लगे और पुनः सामान्य जीवन बिताना प्रारम्भ किया। एक रात्रि नैरंजना नदी के किनारे एक पीपल के वृक्ष के नीचे जब वे गम्भीर ध्यान में निमग्न थे, उन्होंने एक अद्वितीय शांति का अनुभव किया। उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था, उन्हें बोध हो गया था। उसके पश्चात् से ही उन्हें बुद्ध के नाम से संबोधित किया जाने लगा।

बुद्ध अपने ज्ञान को बाँटने के लिए निकल पड़े। उनकी उम्र उस समय मात्र 35 वर्ष की थी। धीरे-धीरे वे वाराणसी के पास सारनाथ नामक स्थान पर पहुँचे और वहाँ पर लोगों को शिक्षा दी। उन्होंने बताया कि -

1. जीवन दुख से भरा है।
2. दुख का कारण है मनुष्य का स्वार्थी होना और उसकी अनन्त इच्छाएँ।

3. जब इच्छाओं का अन्त हो जाता है तभी दुख का अन्त होता है।
4. इच्छाओं से मुक्ति प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित अष्टांग मार्ग अपनाना अनिवार्य है :-

   1- सम्यक् दृष्टि, 2- सम्यक् संकल्प, 3- सम्यक् वाचा (वाणी),
   4- सम्यक् कर्मान्त (कर्म), 5- सम्यक् आजीविका, 6- सम्यक् प्रार्थना,
   7- सम्यक् स्मृति, 8- सम्यक् समाधि।

सम्यक् दृष्टि अर्थात् उपर्युक्त चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान जगत दुःखमय है, तृष्णा का क्षय करने से ही शान्ति मिलना संभव है, हमें एक दूसरे के साथ सदैव शरीर, वाणी और मन से सदाचार, सत्य, प्रेम तथा आस्था के साथ व्यवहार करना चाहिए। यदि सम्यक् दृष्टि न होगी तो आपस में ईर्ष्या, द्वेष और वैर भाव होगा, जो अशान्ति और हिंसा का कारण बनेगा।

अपना ऐश्वर्य एवं सत्ता बढ़ाने के संकल्प के स्थान पर मैत्री और दूसरे के सुख-संतोष के प्रति सद्भाव का संकल्प लेना चाहिए। सम्यक् दृष्टि तथा सम्यक् संकल्प मनुष्य को एक ऐसी जीवन दृष्टि प्रदान करते हैं जिससे वह जीवनमुक्त होता है।

सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्म तथा सम्यक् आजीविका नैतिक जीवन के सिद्धांत हैं। असत्य भाषण, चुगली, गाली, गप-शप आदि से आपसी विवाद बढ़ते हैं, अतः प्रिय, हितकारी तथा मितभाषण आवश्यक है। दूसरे पर आघात, हत्या, चोरी, डाका, व्यभिचार आदि समाज में अनर्थ के कारण हैं। इनका परित्याग कर पर कल्याणकारी मार्ग का अनुगमन करना चाहिए। सही कर्म द्वारा अर्जित धन भोग्य है। कर्तव्य की अवहेलना करके घूसखोरी आदि द्वारा जीविकोपार्जन करना सर्वथा त्याज्य है।

उपर्युक्त नैतिक सिद्धान्तों का अनुपालन करने हेतु मानसिक साधना आवश्यक है। बुरे विचार मन में न आयें, जो बुरे विचार मन में उठें उनको विनष्ट करना, अच्छे विचारों एवं भावनाओं को पोषण देना- यह सम्यक् प्रयत्न कहलाता है।

यह स्मरण रखना कि शरीर नाशवान है, इन्द्रियाँ और मन बन्धन कारक हैं, उन पर नियंत्रण आवश्यक है, सम्यक् स्मृति कहलाती है।

ध्यान का अभ्यास करना, धीरे-धीरे उस स्तर तक पहुँचना जहाँ पर कि सुख-दुःख का मन पर लवलेश न रह जाय, सम्यक् ध्यान कहलाता है।

महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्म धीरे-धीरे गंगा-यमुना के द्वाबा से बढ़कर हिमालय तक पहुँचा। कौशाम्बी, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, वैशाली तथा राजगृह राज्यों में यह छा गया। बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में संलग्न व्यक्ति बौद्ध भिक्षु कहलाते थे। उनके लिये *'बुद्धम् शरणं गच्छामि, धम्मम् शरणं गच्छामि* और *संघम् शरणं गच्छामि'* की प्रतिज्ञा कर उनके बताये हुए अष्टांग मार्ग का अनुपालन करना अनिवार्य होता था।

महात्मा बुद्ध का काफी समय श्रावस्ती में बीता। अन्तिम समय में उन्होंने वैशाली से कुशीनगर की यात्रा की और कुशीनगर में देह त्याग किया। अपने अन्तिम सन्देश में उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था, "ऐसा जीवन जियो मानो प्रकाश तुम्हारे अन्तःकरण में है, इससे भिन्न कोई प्रकाश नहीं है।"

बौद्ध धर्म प्रथम शताब्दी ईसा पश्चात् तक भारत में ही नहीं अपितु मध्य एशिया तथा दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों में फैल गया था। समय के साथ इसके क्षेत्र के विस्तार में कमी आयी है किन्तु अष्टांग मार्ग का अनुगमन आज भी उतना ही प्रासंगिक है। मानव जाति में सद्भाव, सहिष्णुता, समृद्धि और शान्ति के लिये महात्मा बुद्ध के बताये हुये मार्ग का अनुपालन अनिवार्य है।

स्वामी चिन्मयानन्द

स्वामी चिन्मयानन्द का जन्म शिवरात्रि के पावन दिवस पर दिनांक 8 मई, 1916 में एर्नाकुलम, केरल के एक संभ्रान्त परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बड़ाके कुरुपथ कुट्टन मेनन तथा माता का नाम पारुकुट्टी (मान्कू) था। केरल के एक प्रसिद्ध संन्यासी छंटम्बी स्वामीगल प्रायः आपके घर आते थे। आपका जन्म होने पर स्वामीगल जी ने आपका नाम प्रोथमपल्ली बालकृष्णन रखा और वे बड़े प्यार से बालन कहकर पुकारते थे। कहा जाता है कि बालन जब मात्र दो वर्ष के थे, स्वामीगल जी बालन से बड़े प्यार से बहुत सी बातें करते जिसे कोई समझ नहीं पाता था किन्तु बालन दत्तचित्त होकर सुनता। बालन जब मात्र 5 वर्ष के थे, उनकी माँ का निधन हो गया। उनके पालन-पोषण का दायित्व उसी परिवार की एक विधवा काउची नारायणी पर आ पड़ा। काउची अम्मा के स्वयं अपने चार बच्चे थे और बालन को दो छोटी बहनें, किन्तु उन्होंने सभी को बड़े प्यार से पाला।

बालन की विद्यालयी शिक्षा 1921 में प्रारम्भ हुई। श्रीराम वर्मा बालविद्यालय में प्रवेश दिलाया गया जहाँ पर शिक्षण का माध्यम अंग्रेजी था, तथा मलयालम द्वितीय भाषा के

रूप में पढ़ाई जाती थी। बालन ने कक्षा 5 में मलयालम के स्थान पर संस्कृत भाषा पढ़ना शुरु किया। वे अपने विद्यालय के एक आदर्श विद्यार्थी समझे जाते थे। 12 वर्ष की आयु में उन्होंने तैराकी सीखी जो उनकी एक प्रिय हाबी बन गई। यहाँ तक कि 60 वर्ष की आयु में भी वे बड़ी-बड़ी नदियों और समुद्रों में कुशलतापूर्वक तैरते और आनन्द लेते।

माध्यमिक स्तर पर उन्होंने बनस्पति विज्ञान, रसायनशास्त्र तथा जीवविज्ञान को मुख्य विषयों के रूप में चुना, किन्तु इनमें मन न लगने के कारण इन्हें छोड़ दिया तथा साहित्यिक विषयों के अध्ययन के लिए सेन्ट थॉमस कालेज, त्रिचूर में प्रवेश लिया। किशोरावस्था में वे ईश्वर की सत्ता पर विश्वास नहीं करते थे, भाँति-भाँति के प्रश्न करते, किन्तु रात्रि में सोने के पूर्व नित्य शिवजी का ध्यान तथा 'नमःशिवाय' का जप करते।

1940 में उन्होंने अपने प्रिय विषय अंग्रेजी साहित्य में एम०ए० करने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। यहाँ पर यह उल्लेख करना असंगत न होगा कि उनके पिताजी एक अधिवक्ता थे तथा मामा श्री पी० नीलकण्ठ मेनन कोचीन के मुख्य न्यायाधीश रह चुके थे। अतः बालन ने अंग्रेजी के साथ-साथ विधिशास्त्र का भी अध्ययन करना प्रारंभ किया।

जहाँ पर बालन ने शेक्सपियर, स्विफ्ट, मिल्टन, शेली आदि आंग्लभाषा के प्रणेताओं का व्यापक अध्ययन करने के साथ-साथ साहित्यिक परिषद, वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि में पूर्ण रुचि ली, वहीं पर उन्होंने खेलकूद विशेषकर टेनिस की प्रतियोगिताओं में उतने ही सक्रिय रूप से भाग लिया।

अंग्रेजी भाषा में एम०ए० की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त वे दिल्ली में रहने लगे और पत्रकारिता उनका कर्मक्षेत्र बना। उनके अकाट्य तर्कपूर्ण विविध लेख राष्ट्रीय समाचार पत्रों यथा 'फ्री-प्रेस' तथा 'नेशनल हेरल्ड' में प्रकाशित होने लगे, जिन्हें लोग बड़े ध्यान से पढ़ते और उन पर आपस में चर्चा करते।

उक्त चिन्तनधारा के साथ-साथ उनके मन में यह प्रश्न बार-बार उठने लगा कि मानवजीवन का मूल उद्देश्य अथवा लक्ष्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने हेतु समाचार-पत्रों के लिए लेख आदि लिखने के उपरान्त उनके पास जो भी समय मिलता उसे वे दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन में लगाते। वे उस मार्ग की खोंज में लग गये जो जीवन को अभीष्ट पूर्णता तक पहुँचाये। 1947 में ग्रीष्म ऋतु में वे ऋषीकेश स्वामी शिवानन्द के आश्रम-आनन्द कुटीर पहुँच गये। स्वामीजी के सानिध्य में रहकर आध्यात्मिक साधना

और धार्मिक साहित्य का अध्ययन प्रारंभ किया। जब पुनः दिल्ली लौटे तो समाचार पत्रों में धार्मिक पुस्तकों की समीक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक विषयों पर चिन्तनपूर्ण लेख लिखना प्रारंभ किया।

वर्ष 1948 से वे उक्त आश्रम में ही रहने लगे। कुछ महीनों बाद वे अपने चचेरे भाई भास्कर के साथ गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ की यात्रा पर निकल पड़े। केदारनाथ जाते समय उत्तरकाशी में वे स्वामी तपोवन से मिले। विदा के समय स्वामी तपोवन ने उनसे कहा, ''ब्रह्म विचार सदैव अपने मस्तिष्क में रखना।'' मार्ग में फलाहारी बाबा से भेंट हुई जिनसे शिक्षा मिली, ''यथार्थ जीवन ध्यान और त्याग में है।''

गंगोत्री से वापस लौटने पर बालन के बार-बार आग्रह करने तथा उनको पिताजी से अनुमति मिल जाने पर शिवरात्रि, दिनांक 25 फरवरी, 1949 को स्वामी शिवानन्द जी ने उन्हें दीक्षा दी और उनका 'स्वामी चिन्मयानन्द' नामकरण किया तथा उत्तरकाशी में स्थित ब्रह्मानन्द आश्रम में स्वामी तपोवन जी के पास जाकर पौराणिक ग्रन्थों और वेदान्त का गहन अध्ययन करने के लिए सुझाव भी दिया।

स्वामी चिन्मयानन्द के ही शब्दों में ''मैं जो कुछ भी हूँ, मैंने जो कुछ किया है, यह सब मेरे गुरु स्वामी तपोवन महराज की कृपा से हुआ है।''

स्वामी चिन्मयानन्द ने स्वामी तपोवन महराज से पंचदशी, माण्डूक्य उपनिषद, कारिका आदि का अध्ययन ही नहीं किया वरन् उन्होंने उस समय कठिन साधना भी की। वे प्रायः रात-रात भर जंगल के किसी कोने में अथवा गंगातट पर किसी टीले पर ध्यानस्थ देखे जाते।

मई 1951 में गंगोत्री से भारत की यात्रा पर निकल पड़े। छः माह तक पद-यात्रा की, मात्र भिक्षा माँगकर भोजन किया। पहले दिल्ली गये, वहाँ से मद्रास, फिर मद्रास से अरुणांचल महर्षि रमण के आश्रम पहुँचे, फिर कन्याकुमारी और वहाँ से पश्चिमी समुद्र तट के किनारे चलते-चलते अपने प्रान्त केरल पहुँचे। नवम्बर 1951 तक यात्रा पर ही रहे। इस अवधि में राष्ट्र में जो धर्म और संस्कृति की अधोगति देखी उससे उनका साहसी मन उद्वेलित हो उठा। उन्होंने उपनिषदों तथा गीता के माध्यम से भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवजाति में नैतिकता, अपने धर्म के प्रति आस्था तथा आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति जागृति उत्पन्न करने का संकल्प लिया। उनका दृढ़ विश्वास था कि इससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का पुनर्निर्माण होगा। वे एक दैवी योजना (डिवाइन मिशन) लेकर निकल पड़े।

उन्होंने अपने प्रवचनों को ज्ञानयज्ञ की संज्ञा दी। गीता के निम्नलिखित दो श्लोकों की पूर्ण पुष्टि की :

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञानयः परन्तपः ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।। (४:३३)

अर्थात् श्री कृष्ण भगवान अर्जुन से कह रहे हैं, हे परन्तप! द्रव्य यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है, क्योंकि कर्म की परिणति ज्ञान में है।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ।। (१८:७०)

अर्थात् जो मनुष्य इस धर्म्य संवाद का अभ्यास करेगा, वह मुझे यज्ञ द्वारा भजेगा, ऐसा मेरा मत है।

31 दिसम्बर, 1951 को पूना में आरंभ हुआ 100 दिन का प्रथम ज्ञानयज्ञ, जिसका शीर्षक था 'हम हिन्दू बनें' (लेट अस बी हिन्दूज)। लक्ष्य था - आध्यात्मिक जागरण। हिन्दू धर्म पूर्णत्व का विज्ञान है। यह सनातन सत्य है (इटरनल ट्रुथ) प्रथम दिन मात्र 18 श्रोता आये थे, उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। समय की पाबन्दी, पूर्ण शान्ति और अनुशासन इस यज्ञ की अपनी विशेषता थी, जो अन्यत्र दुर्लभ है। कठिन से कठिन अन्तर्वस्तु को भी दैनिक जीवन के उदाहरणों द्वारा सरल से सरल बना देना स्वामी जी के लिए सामान्य बात होती। बीच-बीच में विनोद के फौव्वारे सबकी थकान दूर कर देते।

उनके प्रवचन छपकर 'यज्ञप्रसाद' के रूप में लोकप्रिय हो चले। ज्ञानयज्ञों की संख्या प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। 1956 का यज्ञ दिल्ली में आयोजित किया गया था जिसका उद्घाटन करते हुए भारत के राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा था, "यह राष्ट्र की सांस्कृतिक श्रेष्ठता को पुनः प्रतिष्ठित करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है।"

ज्ञान यज्ञ प्रारंभ होने के पूर्व पहले हवन हुआ करते थे, आगे चलकर इनके स्थान पर विष्णुसहस्त्रनाम का पाठ, जिसे 'लक्ष्यार्चना' कहा जाता था, होने लगा। स्वामी जी जप पर भी बहुत बल देते थे, क्योंकि इससे ध्यान को केन्द्रित करने में बड़ी सहायता मिलती है।

वर्ष 1953 में चिन्मय मिशन की स्थापना हुई जिसका अभीष्ट है राष्ट्र का नवजागरण। वर्ष 1955 में आल इण्डिया रेडियो पर संकेतवाद तथा हिन्दू कर्मकाण्ड, जीवन का विज्ञान तथा कर्मयोग (कर्म ही पूजा हैं) पर अंग्रेजी भाषा में स्वामी जी के

व्याख्यान हुए जो चिरस्मरणीय हैं। 1955 से ही 'त्यागी' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसमें स्वामी चिन्मयानन्द जी के लेखों के अतिरिक्त स्वामी शिवानन्द, श्री अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द, अल्डुअस हक्सले आदि के प्रासंगिक आध्यात्मिक लेख प्रकाशित किये जाते।

स्वामी जी ने विद्यालयों की स्थापना पर भी बल दिया जिनके माध्यम से बालक-बालिकाओं में अच्छे संस्कार डाले जा सकें। उनकी क्षमताओं और प्रतिभाओं को जगाना अभीष्ट है।

नवयुवकों, नवयुवतियों, सामान्य नागरिकों आदि सभी में निष्ठा एवं उत्साह जगाने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाने लगे।

स्वामी जी ने न केवल स्वदेश में अपितु विश्व के सभी देशों में ज्ञान-ज्योति जगाने का संकल्प लिया और उसे सांगोपांग पूर्ण कर वे 1993 में चिर समाधि में लीन हो गये।

"अधिक से अधिक सुख, अधिक से अधिक लोगों को, अधिकतम समय तक प्रदान करना ही हमारा धर्म।" चिन्मय मिशन का यह संकल्प वाक्य है।

ज्ञानयज्ञ और आध्यात्मिक शिविरों का संचालन, वेदान्त तथा भारतीय संस्कृति में प्रशिक्षण हेतु सान्दीपनी साधनालय, मुम्बई, सान्दीपनी (हिमालय) चिन्मय तपोवन ट्रस्ट सिद्धवाड़ी, चिन्मय अन्तर्राष्ट्रीय न्यास, कोचीन आदि की स्थापना, नगर-नगर में स्वाध्याय केन्द्रों का गठन, बालविहार 6 से 15 वर्ष की आयु के बालक-बालिकाओं के लिये, युवाकेन्द्र (चिक), चिन्मय विद्यालय, हरिहर व्यावसायिक विद्यालय, चिन्मय अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालय कोयम्बटूर, पितामह सदन-तपोवन कुटी, आदि अनेक संस्थाएँ सम्प्रति संचालित हो रही हैं।

स्वामी जी द्वारा उल्लिखित पुस्तकें - ध्यान और जीवन, जीने की कला, गीता की व्याख्या, विभिन्न उपनिषदों की व्याख्याएँ, आदि अनेक ग्रन्थ व्यक्तिगत जीवन तथा राष्ट्र के नवनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

निःसन्देह स्वामी चिन्मयानन्द का जीवन और कृतित्व आबाल वृद्ध - सभी के लिए अमर प्रेरणास्रोत है।

श्री श्री परमहंस योगानन्द

परमहंस योगानन्द का जन्म 5 जनवरी, 1893 को गोरखपुर में हुआ था। उनका बचपन का नाम मुकुन्द लाल था। उनके पिता का नाम श्री भगवती चरण घोष था जो कि बंगाल - नागपुर रेलवे में उपाध्यक्ष के रूप में कार्यरत थे जिससे मुकुन्द को कलकत्ता से लेकर लाहौर तक विभिन्न नगरों में रहने का अवसर मिला। श्री घोष श्रीमद्भगवत्गीता को अपना मूल मार्गदर्शक ग्रन्थ मानते थे। वे अपने कर्तव्य के प्रति अत्यन्त निष्ठावान थे, साथ ही अर्थोपार्जन के प्रति निस्पृह। वे प्रायः कहा करते थे - ''कोई न कुछ लेकर आता है और न ही कुछ अपने साथ लेकर जाता है।'' उनके संबंध में यह कहा जाता है कि उनके सेवानिवृत्ति के वर्षों बाद इंग्लैण्ड से कोई लेखाकार आया था जिसने इनके कार्यों की समीक्षा करते हुए लिखा कि श्री घोष ने तीन अधिकारियों के कार्य के बराबर सेवा की, उन्हें रू० 1,25,000 बोनस दिया जाय, जो चेक द्वारा उनके पास प्रशंसापत्र के साथ प्रेषित किया गया।

मुकुन्द की माँ प्रेम और सहानुभूति की प्रतिमूर्ति थीं। वे प्रायः महाभारत और रामायण से कोई न कोई प्रसंग लेकर अपने बच्चों को स्वानुशासन, मैत्री तथा करुणा की शिक्षा प्रदान करतीं।

माता-पिता दोनों वाराणसी के एक सुप्रसिद्ध योगी, हिमालय पर्वत पर वास करने वाले संत महावतार बाबा के शिष्य लाहिड़ी महाशय के परम भक्त थे और उनसे क्रिया योग की दीक्षा ली थी। क्रिया योग के नित्य अभ्यास से व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण कर, उनके कुप्रभाव से मुक्त हो, अपनी चेतना को ईश्वर चेतना में अधिष्ठित करने में समर्थ होता है। गुरु की पूजा-अर्चना के समय मुकुन्द भी वहाँ सदैव उपस्थित रहते। उनको ऐसा प्रतीत होता कि चित्र से लाहिड़ी महाशय साक्षात् निकलकर उनके सामने खड़े हैं। 11 वर्ष की आयु में ही माँ का निधन हो गया। माँ ने मुकुन्द से एक रहस्य छिपा रखा था जिसे उनके बड़े भाई अनन्त ने माँ की मृत्यु के लगभग चौदह माह पश्चात् बताया। मुकुन्द के जन्म के बाद जब उनकी माँ उन्हें गोदी में लेकर लाहिड़ी महाशय के पास गई तो उन्होंने नवजात शिशु के मस्तक पर हाथ फेरते हुए यह भविष्यवाणी की थी कि वह बालक बड़ा होकर एक महान योगी बनेगा और यह एक आध्यात्मिक इंजन की भाँति बहुत सी आत्माओं को ईश्वर के दरबार में पहुँचायेगा। इसी प्रकार, जब मुकुन्द 10 वर्ष के थे तो एक दिन उनके घर पर एक योगी आया था जिसने यह भविष्यवाणी की थी कि दूसरे दिन पूजा के समय उनकी माँ

को एक बाजूबन्द मिलेगा, और वह बाजूबन्द मुकुन्द द्वारा धारण किया जायेगा और उचित समय आने पर वह वहाँ चला जायेगा जहाँ से आया होगा।

ऋषियों-योगियों की वाणी निष्फल नहीं जाती। पिता की अनुमति लेकर मुकुन्द कुछ दिन बाद ही वाराणसी चले गये। वहाँ स्वामी प्रणवानन्द जी का दर्शन किया। फिर हिमालय की यात्रा की। स्वामी केवलानन्द के सान्निध्य में रहकर कुछ दिनों तक गीता का अध्ययन किया। कलकत्ता में हाई स्कूल में पढ़ रहे थे, तभी वे सन्त महात्माओं के सम्पर्क में आने लगे। गन्ध बाबा, मास्टर महाशय, नरेन्द्र भादुरी, बाघ स्वामी, रामगोपाल तथा प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु से उनका साक्षात्कार हुआ।

उनकी आध्यात्मिक ज्ञान पिपासा उत्तरोत्तर बढ़ती गई। हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपसन्त उन्होंने श्री भारत धर्म महामण्डल, वाराणसी में प्रवेश लेने हेतु अपने पिता से आज्ञा ली। वहाँ पहुँचकर वे कठिन ध्यान साधना में लग गये। अन्ततः एक दिन स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरि, जो उन दिनों श्रीरामपुर से अपनी माँ का दर्शन करने आये थे, उनकी भेंट हुई। वाराणसी में ही कुछ दिनों पूर्व मुकुन्द द्वारा अत्यन्त गोपनीय ढंग से सुरक्षित रखा गया बाजूबन्द अकस्मात् गायब हो गया था। युक्तेश्वर जी ने मिलते ही मुकुन्द से कहा, "बाजूबन्द की चिन्ता न करो, वह जहाँ से आया था, वहीं चला गया।" मुकुन्द के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, साथ ही उनको विश्वास हो गया कि उनको यथार्थ गुरु मिल गया है। वाराणसी से आगरा अपने भाई से मिलते हुए एक माह बाद वे कलकत्ता से लगभग 12 किलोमीटर दूर श्री युक्तेश्वर जी के आश्रम में पहुँच गये।

श्री युक्तेश्वर जी ने उनके प्रति यह भविष्यवाणी की कि एक दिन वे पाश्चात्य देशों में जायेंगे, किन्तु वहाँ के लोग प्राचीन भारतीय अध्यात्म ज्ञान को यथार्थ रूप में तभी ग्रहण कर सकेंगे जबकि यह ज्ञान एक ऐसे भारतीय शिक्षक द्वारा प्रदान किया जाय जिसने विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि प्राप्त की हो। अतः उन्हें कलकत्ता अपने परिवार में लौट जाने तथा स्नातक की उपाधि हेतु विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिये निर्देशित किया। किन्तु मुकुन्द इसी शर्त पर तैयार हुए कि पहले स्वामी जी उनको ईश्वर का साक्षात्कार कराने का दायित्व स्वीकार करें।

कलकत्ता अपने घर लौटकर उन्होंने स्काटिश चर्च कालेज में प्रवेश लिया, किन्तु उनका अधिकतर समय अपने गुरु श्री युक्तेश्वर जी के संरक्षण एवं निर्देशन में व्यतीत होता। श्री युक्तेश्वर जी एक सिद्ध महात्मा होने के साथ-साथ श्रेष्ठ शिक्षक भी थे। वे शिष्य

और शिक्षा को यथार्थ में एक ही मूल का मानते थे। अनुशासन, कर्तव्यनिष्ठा, शुद्ध भावना तथा सतत् साधना में उनका पूर्ण विश्वास था। अपने शिष्यों (चेलों) को चाहे वे जिस भी उम्र या परिवार के हों, सबके लिये शान्ति, शिष्टाचार, आत्म सम्मान और पूर्ण आत्म नियंत्रण पर बल देते थे। उनके जीवन का हर पहलू एक सुयोग्य एवं सुग्राही (रिसेप्टिव) शिष्य के लिए कुछ न कुछ महत्वपूर्ण गुण एवं सद्भाव सीखने का सुअवसर प्रदान करता। मुकुन्द ने ऐसे किसी भी अवसर को हाथ से न जाने दिया। प्रायः उनके निकट शान्त चित्त बैठकर उसने अनेक गहन और सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियाँ प्राप्त कीं। साथ ही क्रिया योग का श्रद्धापूर्वक गहनतम अभ्यास कर सच्चिदानन्द (सत्+चित्+आनन्द) का साक्षात्कार किया।

आध्यात्मिक साधना के साथ मुकुन्द का विद्यालयी अध्ययन भी चलता रहा। किन्तु कलकत्ता और श्रीरामपुर की दूरी के कारण कुछ कठिनाई भी थी। दैव योग से श्रीरामपुर कालेज में स्नातक स्तर की शिक्षा की व्यवस्था हो गई और अन्ततः जून 1915 में मुकुन्द ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि ग्रहण की। उनके पिता की इच्छा थी कि वे बंगाल नागपुर रेलवे में सेवा करें, किन्तु वे तो संन्यास लेना चाहते थे। श्री युक्तेश्वर गिरि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर बृहस्पतिवार, जुलाई 1915 को उनके स्वयं द्वारा चुने हुए नाम - योगानन्द अर्थात् ईश्वर से युक्त होने पर प्राप्त आनन्द के नाम से उन्हें विभूषित किया, तब से मुकुन्द लाल घोष स्वामी योगानन्द गिरी के नाम से सम्बोधित किये जाने लगे।

सामान्य विद्यालयों में प्रायः विद्यार्थियों के शारीरिक और मानसिक विकास पर बल दिया जाता है, किन्तु जब तक उनके नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास पर भी ध्यान न दिया जाय तब तक वे मानव जीवन में अपेक्षित शान्ति और आनन्द का सुख नहीं प्राप्त कर सकते। अतः स्वामी योगानन्द ने ऐसे विद्यालयों की स्थापना का संकल्प लिया जो मानव जीवन को पूर्णत्व प्रदान कर सकें। उन्होंने 1916 में बंगाल के छोटे से गाँव डिहिका में मात्र 7 बच्चों से प्रथम विद्यालय की शुरुआत की। एक वर्ष बाद अर्थात् 1918 में कलकत्ता से लगभग 300 किलोमीटर दूर महाराज, काशिमबाजार, श्री मानिकचन्द्र नन्दी की सहायता से उन्हीं के राजमहल में राँची में योगदा सत्संग ब्रह्मचर्य विद्यालय की स्थापना की। प्राचीन भारतीय गुरुकुलों की भाँति अधिकतर शिक्षण कार्य कक्षा कक्षों के बाहर वृक्षों की छाया में किया जाता। वहाँ पर कृषि, उद्योग, वाणिज्य, तथा साहित्यिक वर्गों में इण्टर तक की शिक्षा के साथ-साथ यौगिक ध्यान तथा स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास के लिये ''योगदा'' नामक विशेष प्रशिक्षण पर बल दिया जाता।

1920 में 'द यूनाइटेड यूनिटेरियन एसोसियेशन', अमेरिका ने सहिष्णु धार्मिक संस्थाओं का एक विश्व सम्मेलन बोस्टन नगर में आयोजित किया जिसमें प्रतिभाग करने हेतु स्वामी योगानन्द जी को निमन्त्रण प्राप्त हुआ। स्वामी जी 'द सिटी आफ स्पार्टा' नामक जलयान से अगस्त, 1920 में निकल पड़े। लगभग दो माह पश्चात् ये बोस्टन पहुँचे। "धर्म का विज्ञान" विषय पर वार्ता प्रस्तुत करते समय विश्व सम्मेलन में जब उन्होंने कहा, "धर्म सार्वभौमिक और एक है। विशिष्ट धर्मों में प्रचलित रीति-रिवाजों का सार्वभौमीकरण आवश्यक नहीं है किन्तु उनमें जो सामान्य तत्व हैं उनका सार्वभौमीकरण किया जा सकता है तथा हम सभी से यह अपेक्षा कर सकते हैं कि वे उनका पूर्ण अनुपालन करें।" सभी श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो उठे।

धर्म सम्मेलन के उपरान्त स्थान-स्थान पर उनके व्याख्यान हुए, तथा उन्होंने आत्मा के गीत (सान्ग्स ऑफ द सोल) नामक कविता की पुस्तक का भी प्रकाशन किया। उनका भाषण भी, 'द साइन्स ऑफ रिलिजन' नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया गया।

1924 में वे विभिन्न देशों की यात्रा पर निकल पड़े और अनेक सुप्रसिद्ध नगरों में व्याख्यान दिये। उदार अध्येताओं के सहयोग से 1925 में लास एंजिल्स, केलिफोर्निया के माउन्ट वाशिंगटन स्टेट में उन्होंने अपना प्रधान कार्यालय बनाया। स्वामी जी ने लास ऐन्जिल्स को भारत का वाराणसी कहा था। सेल्फ रियलाइजेशन फेलोशिप नामक संगठन की लास एन्जिल्स में स्थापना की। 1920-30 के बीच हजारों अमेरिकी स्त्री-पुरुषों ने उनकी कक्षाओं में प्रतिभाग किया। 1924 में उन्होंने 'व्हिस्पर्स फ्राम इटर्निटी' नामक काव्य ग्रन्थ का प्रकाशन किया।

वे 22 अगस्त, 1935 को भारत लौटे। राँची केन्द्र का चतुर्दिक विकास किया। वर्ष 1938 में दक्षिणेश्वर, कलकत्ता में योगदामठ की स्थापना की, जहाँ पर आज योगदा सत्संग सोसाइटी, भारत का मुख्यालय है। "योगदा" नामक त्रयमासिक पत्रिका के प्रकाशन के अतिरिक्त जिज्ञासुओं को तीन-तीन लेखों के पाठ प्रतिमाह भेजे जाते हैं जिनमें सशक्तिकरण (इनर्जाइजेशन), एकाग्रता (कन्सेन्ट्रेशन) तथा ध्यान (मेडीटेशन) की विधियों की विस्तार से व्याख्या की गई होती है। इनका सम्यक् अनुपालन क्रियायोग की उच्च्व साधना में सहायक सिद्ध होता है।

सेल्फ रियलाइजेशन फेलोशिप (एस.आर.एफ.) के केन्द्र अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, जापान, स्विटजरलैण्ड, साउथ अफ्रीका आदि 50 देशों में कार्य कर रहे हैं। मात्र अमेरिका में 50 शाखा केन्द्र भी हैं। एनसेनिटास, कैलिफोर्निया में एक भव्य मन्दिर भी है। भारत में योगदा सत्संग सोसाइटी (वाई.एस.एस.) के शाखा केन्द्र सभी राज्यों में हैं। उत्तर प्रदेश का केन्द्र लखनऊ में है।

स्वामी योगानन्द जी ने धर्म एवं दर्शन पर अनेक उच्चकोटि की पुस्तकों का प्रणयन किया। जिनमें से 'आटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी', 'मैन्स एटरनल क्वेस्ट', 'द डिवाइन रोमान्स', 'वाइन ऑफ द मिस्टिक', 'द लॉ ऑफ सक्सेस', 'व्हिस्पर्स फ्राम एटर्निटी', 'हाउ यू कैन टाल्क विद गॉड', 'स्प्रिटुएल डायरी', 'मेटाफिजिकल मेडीटेशन्स', 'साइन्टिफिक डीलिंग', 'एफर्मेशन्स' आदि विश्व विख्यात हैं तथा इनका विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। प्रथम पुस्तक 'लाइफ आफ ए योगी' उनकी आत्मकथा है। आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने के लिये मार्गदर्शक पुस्तिका के रूप में इसे अद्वितीय पुस्तक कहा जा सकता है। स्वामी जी ने इन्द्रियों पर नियंत्रण कर प्राणशक्ति और इच्छाशक्ति को उचित गतिविधियों के साथ जोड़ने को सफलता की कुंजी बताया है। उनके अनुसार निरन्तर विश्वास और अनवरत प्रार्थना द्वारा परमशक्ति का आह्वान किया जा सकता है। श्रीमद्भगवत्गीता की उन्होंने 'गॉड टाक्स विथ अर्जुन' नामक पुस्तक के रूप में वृहत् व्याख्या की है। वे प्रायः कहते थे -

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परं शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।। गीता : १८:६२

अर्थात् अपने हृदय की सम्पूर्ण उत्कंठाओं के साथ ईश्वर में आश्रय ढूँढ़ें। उनकी कृपा से आप परम् शान्ति तथा शाश्वत् सुरक्षा प्राप्त करेंगे।

मनुष्य के सुख-स्वास्थ्य और राष्ट्र के दीर्घ जीवन के लिये योग का ज्ञान, जो ईशोपलब्धि का विज्ञान है, अति आवश्यक है। स्वामी जी के शब्दों में "प्रेरणा, सृजनात्मक शक्ति एवं ऊर्जा आप में प्रवाहित होने लगती है, जब ध्यान के दौरान उस अनन्त मन के साथ आप समस्वरित होने लगते हैं।" सामाजिक सद्भाव के लिये आवश्यक है कि हम प्रातः उठने पर नित्य यह प्रतिज्ञा करें कि -

"आज भोर से ही जिससे मिलूँगा, उस प्रत्येक मनुष्य में खुशी बिखेरता जाऊँगा। आज के दिन मैं जिस-जिस से मिलूँगा, उस प्रत्येक व्यक्ति के मन को सूर्य की

आह्लादकच्चउष्णता प्रदान करूँगा।" "सभी व्यक्तियों में ईश्वर को देखना सीखिये, चाहे वे किसी जाति या धर्म के हों। जब आप प्रत्येक मानव से अपनी एकरूपता का अनुभव प्रारंभ कर देंगे, तभी आप जानेंगे दैवीय प्रेम क्या है, उससे पहले नहीं।" निःसन्देह उनका प्रत्येक शब्द उनके दिव्य जीवन और उत्कृष्ट चिन्तन का प्रतीक है।

स्वामी योगानन्द जी भूत, भविष्य और वर्तमान सबका साक्षात् दर्शन करते थे। 7 मार्च, 1952 को लॉस एन्जिल्स में भारत के तत्कालीन राजदूत श्री बी०आर० सेन के सम्मान में एक समारोह आयोजित किया गया था जिसमें परमहंस योगानन्द जी को भी भाषण देना था। समारोह स्थल पर पहुँचने के पूर्व ही परमहंस जी ने कह दिया था कि 'अब मुझे चलना है' और वैसा ही हुआ। वे जैसे ही भाषण देकर कुर्सी पर बैठे, चिर समाधि में लीन हो गये। उन्होंने यह भी कहा था कि मरणोपरान्त उनके शरीर में कोई परिवर्तन न होगा। उनका शव 20 दिन तक रखा रहा किन्तु उनके शरीर पर न किसी प्रकार के सूखने अथवा गिरावट का आभास हुआ, अपितु उससे दिव्य आभा प्रस्फुटित होती रही। इतिहास में यह एक अनुपम घटना है।

परमहंस योगानन्द सदा सर्वदा हमारे लिये प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

• • •

खण्ड (ग) संगीत

विद्यालय कुलगीत

भरद्वाज ऋषि तपस्थली यह, पतञ्जलि श्रृंखला सुहानी ।
आदर्श गुरुकुल है यह हमारा, नहीं कोई जग में इसका सानी ।।
माँ भारती का यह भव्य मन्दिर ।
बसा जान्हवी सुरम्य तट पर ।।
चतुर्दिशा में प्रकाश भरती, ये गंगा गुरुकुल की सत्य वाणी ।।१।।
भरद्वाज...
अध्यात्म विज्ञान वाणिज्य संगम ।
गणित कला संगीत समागम ।।
गूंज रही यहाँ पवित्र गीता और प्राच्य ऋषियों की वेदबानी ।।२।।
भरद्वाज...
ये गंगा यमुना पवित्र संगम ।
सरस्वती अदृश्य करे समागम ।।
पतितपावन प्रयाग भू पर, प्रकट हुये अगणित ब्रह्मज्ञानी ।।३।।
भरद्वाज ...
श्री लोकमणि जी की दिव्यदृष्टि ।
ये उनका संकल्प ये उनकी शक्ति ।।
प्रकट हुई है नवीन होकर, ये दिव्यशिक्षास्थली सुहानी ।।४।।
भरद्वाज...
पतञ्जलि संस्थान की ज्ञानज्योति ।
अज्ञान तम को विदीर्ण करती ।।
पतञ्जलि कुल की साधना की, ये मूर्तसंस्था परम सुहानी ।।५।।
भरद्वाज...
भरद्वाज ऋषि तपस्थली यह, पतञ्जलि श्रृंखला सुहानी ।
आदर्श गुरुकुल है यह हमारा, नहीं कोई जग में इसका सानी ।।

♦ ♦ ♦

अपने पतञ्जलि विद्या मन्दिर पे हमें अभिमान है।

यह प्रयाग की पुण्य भूमि का गौरव, इसकी शान है,
अपने पतञ्जलि विद्या मन्दिर पे हमें अभिमान है।

मूर्तरूप ले आज खड़ा यह लोकमणि जी का सपना,
पूर्व और पश्चिम संगम का अद्‍भुत विमल वितान तना,
ज्ञान-दान-वीणा में अपनी ऊँची सबसे तान है।
अपने पतञ्जलि.......

नव जीवन के सुखद स्वर्णमय सपनों का आधार धरे,
अपना पावन मन्दिर नित मन में नूतन विश्वास भरे,
अपने पथ अपनी मंजिल का देता सम्यक् ज्ञान है।
अपने पतञ्जलि ....

प्रतिपल-प्रतिक्षण आगे बढ़ते राहों के बन अन्वेषी,
समाधान न हो जिसका ऐसी न कोई मुश्किल देखी,
कर्म हमारी पूजा है, काबा-काशी ईमान है।
अपने पतञ्जलि ....

अखिल विश्व के मानचित्र पर यह स्थापित हो जाये,
तक्षशिला नालन्दा जैसा इसका परचम लहराये,
हमें अलग सबसे कायम करनी अपनी पहचान है।
अपने पतञ्जलि ....

◆ ◆ ◆

ये हमारा गंगागुरुकुलम् !

ये हमारा गंगा गुरुकुलम, ये हमारा गंगागुरुकुलम्।
यह अखण्ड ज्योति ज्ञान की, काटे उर के सारे अन्धतम।।
ये हमारा ....

दीप से जला है दीप ये, मोती हम बनेंगे सीप ये।
नव सृजन का नव्य गीत ये, सत्य है ये, शिव है, सुन्दरम।।
ये हमारा ....

शुभ्र स्वप्न लोकमणि जी का, कुल पतंजलि की ये शिखा।
अनवरत प्रकाश बाँटता, लौ न होने पाये इसकी कम ।।
ये हमारा ....

नव विहान का पुलक भरा द्वार, इसको हम बनायेंगे,
है हमारी सीमा आसमां, बादलों पे बैठ गायेंगे,
हम धरा पे स्वर्ग ला सकें, अपने बाजुओं में है वो दम ।।
ये हमारा ....

♦ ♦ ♦

गणेश वन्दना

गाइये गणपति जग वन्दन ....

गाइये गणपति जग वन्दन
शंकर सुवन भवानी नन्दन
मोदक प्रिय मुद मंगलदाता
विद्या वारिधि बुद्धि विधाता
सिद्धि सदन गज वदन विनायक
कृपा सिन्धु सुन्दर सब लायक
माँगत तुलसीदास कर जोरे
बसहु राम सिय मानस मोरे।

♦ ♦ ♦

जय गणेश गणनाथ ....

जय गणेश गणनाथ दयानिधि
सकल विघ्न करे दूर हमारे
जय गणेश ....
प्रथम करे जो ध्यान तुम्हारे
तिनके पूरन कारज सारे
लम्बोदर गज वदन विनायक
कर त्रिशूल-परशूधर न्यारे
ब्रह्मादिक सुर ध्यावत मन में
ऋषि मुनि गण सब दास तुम्हारे
जय गणेश ....

♦ ♦ ♦

सरस्वती वन्दना

वर दे, वर दे, ...

वर दे, वर दे, वर दे, वीणा वादिनि वर दे!
प्रियं स्वतंत्र रव अमृत मंत्र नव
भारत में भर दे
वीणा वादिनि वर दे ....
काट-अन्ध उर के बन्धन-स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष भेद तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे,
वीणा वादिनि वर दे ....
नवगति नव लय ताल छन्द नव
नवल कण्ठ नव जलद् मन्द रव
नव नभ के नव विहग वृन्द को
नव पर नव स्वर दे,
वीणा वादिनि वर दे ....

♦ ♦ ♦

माँ शारदे ! वरदान दे ....

माँ शारदे! वरदान दे, मुझको नवल उत्थान दे! - २
माँ सरस्वती हंसासिनी वागीश वीणा वादिनि
विद्या विनय का दान दे माँ सरस्वती वरदान दे
मुझको नवल उत्थान दे
माँ शारदे ....
माँ शारदे वर दायिनी, रिधि-सिद्धि-बुद्धि दायिनी
करुँ प्रार्थना मैं नित प्रति वरदान मंगल कारिणी
मुझको नवल उत्थान दे
माँ शारदे ....

♦ ♦ ♦

जय जय हे भगवति सुर भारति ....

जय जय हे भगवति सुर भारति
तव चरणौ प्रणमामः

नाद ब्रह्ममयि जय बागेश्वरि
शरणं ते गच्छामः

त्वमसि शरण्या त्रिभुवन धन्या
सुरमुनि वंदित चरणा

नवरस मधुरा कविता मुखरा
स्मित रुचि रुचिरा भरणा

आसीना भवमानस हंसे
कुन्द तुहिन शशि धवले

हर जड़तां कुरु बोधि विकासं
सित पंकज तनु विमले

ललित कलामयि ज्ञान विभामयि
वीणा पुस्तक धारिणी

मतिरास्ताम् नो तव पद कमले
अयि कुंठा विष हारिणी

♦ ♦ ♦

नमन

मनसा सततं स्मरणीयम् ....

मनसा सततं स्मरणीयम्
वचसा सततं वदनीयम्
लोकहितं मम् करणीयम्

न भोगभवने रमणीयम्
न च सुख शयने शयनीयम्
अहर्निशं जागरणीयम्
लोकहितं ....

न जातु दुःखं गणनीयम्
न च निज सौख्यं मननीयम्
कार्यक्षेत्रे त्वरणीयम्
लोकहितं मम ....

दुःख सागरे तरणीयम्
कष्ट पर्वते चरणीयम्
विपत्ति विपिने भ्रमणीयम्
लोकहितं ....

गहनारण्ये घनांधकारे
बंधुजना ये स्थिता गह्वरे
तत्र मया संचरणीयम्
लोकहितं ....

♦ ♦ ♦

इतनी शक्ति हमें देना दाता.......

इतनी शक्ति हमें देना दाता
मन का विश्वास कमजोर हो न
हम चलें नेक रस्ते पे हमसे
भूलकर भी कोई भूल हो न
इतनी शक्ति ....

दूर अज्ञान के हों अन्धेरे
तू हमें ज्ञान की रोशनी दे
हर बुराई से बचते रहें हम
जितनी भी दे भली जिन्दगी दे
बैर हो ना किसी का किसी से
भावना मन में बदले की हो न
हम चले ....

हम न सोचें हमें क्या मिला है
हम ये सोचें किया क्या है अर्पण
फूल खुशियों के बाँटे सभी को
सबका जीवन ही बन जाये मधुबन
अपनी करुणा का जल तू बहाकर
कर दे पावन हर इक मन का कोना
हम चले ....

हर तरफ जुल्म है, बेबसी है
सहमा सहमा सा हर आदमी है
पाप का बोझ बढ़ता ही जाये
जाने कैसे ये धरती थमी है?
बोझ ममता से अब तू उठा ले
तेरी रचना का ही अन्त हो न
हम चले ....

♦ ♦ ♦

अज्ञान के अंधेरों से ....

अज्ञान के अंधेरों से हमें ज्ञान के उजालों की ओर ले चलो
असत्य की दीवारों से हमें सत्य के शिवालों की ओर ले चलो
अज्ञान के अन्धेरों से ....

सारे जहाँ के सब दुःखों का एक ही तो निदान है
या तो वो अज्ञान है, या फिर वो अभिमान है
नफरतों के जहर से प्रेम के प्यालों की ओर ले चलो
अज्ञान के अन्धेरों से ....

धर्म की मर्यादा न तोड़ें, अपनी सीमा में रहें
न करें अन्याय न, अन्याय औरों का सहें
कायरों से दूर हों, वीर हृदय वालों की ओर ले चलो
अज्ञान के अन्धेरों से ....

♦ ♦ ♦

हे दयामय आप ही ....

हे दयामय आप ही संसार के आधार हो
आप ही करतार हो हम सबके पालन हार हो
हे दयामय ....

जन्मदाता आप ही माता पिता भगवान हो
सर्वसुखदाता सखा भ्राता हो तन मन प्राण हो
आपके उपकार का हम ऋण चुका सकते नहीं
बिन कृपा के शान्ति सुख का सार पा सकते नही
हे दयामय ....

दीजिए वह मति बने हम सद्गुणी संसार में
मन हो मंजुल कर्म में और तन लगे उपकार में
हे दयामय ....

♦ ♦ ♦

दया कर दान ....

दया कर दान विद्या का हमें परमात्मा देना
दया करना हमारी आत्मा में शुद्धता देना
हमारे ध्यान में आओ, प्रभु आँखों में बस जाओ
अँधेरे दिल में आकर के परम ज्योति जगा देना
दया कर दान ....
बहा दो प्रेम की गंगा, दिलों में प्रेम का सागर
हमें आपस में मिलजुल कर, प्रभु रहना सिखा देना
दया कर दान ....
हमारा कर्म हो सेवा, हमारा धर्म हो सेवा
सदा ईमान हो सेवा, व सेवक जन बना देना
दया कर दान ....
वतन के वास्ते जीना, वतन के वास्ते मरना
वतन पर जाँ फिदा करना, प्रभु हमको सिखा देना
दया कर दान ....
दया करना हमारी ....

♦ ♦ ♦

मानवता के मन मंदिर ....

मानवता के मन मंदिर में ज्ञान का दीप जला दो
करुणा निधान भगवान मेरे, भारत को स्वर्ग बना दो
दुःख दरिद्र का नाश करो, मानव के कष्ट मिटा दो
अमृत की वर्षा बरसाकर भूख की आग बुझा दो
भेदभाव सब मिटा जगत में प्यार का रंग फैला दो
करुणा निधान ....
नव प्रभात फिर महक उठे मेरे भारत की फुलवारी
सब हों एक समान जगत में कोई रहे न भिखारी
एक बार माँ वसुन्धरा को नवशृंगार सजा दो
करुणा निधान ....

♦ ♦ ♦

मातृ वंदना

मुक्ति के संघर्ष ....

मुक्ति के संघर्ष का आधार वन्देमातरम्
माँ भारती के हैं गले का हार वंदेमातरम्
मुक्ति के संघर्ष ....
मान वन्देमातरम्, सम्मान वन्दे मातरम्
देश में है क्रान्ति की पहचान वन्देमातरम्
पर्व उत्सव है, त्यौहार वन्देमातरम्
मुक्ति के संघर्ष ....
संकल्प वन्दे मातरम्, आवाज वन्देमातरम्
देशभक्तों के हैं सर का ताज वन्देमातरम्
एकता सद्भावना और प्यार वन्देमातरम्
मुक्ति के संघर्ष ....
हर्ष वन्देमातरम्, उत्कर्ष वन्दे मातरम्
मूल वन्देमातरम्, आदर्श वन्देमातरम्
आग में है जिन्दगी की धार वन्देमातरम्
मुक्ति के संघर्ष ....

♦ ♦ ♦

हिमाद्रि तुंग श्रृंग ....

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती-
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती-
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ - प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
असंख्य कीर्ति रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह सी,
सपूत मातृभूमि के रुको न शूर साहसी।
अराति सैन्य सिन्धु में, सुबाड़वाग्नि-से जलो,
प्रबीर हो जयी बनो, -बढ़े चलो, बढ़े चलो।

♦ ♦ ♦

जननी जन्मभूमि ....

जननी जन्मभूमि स्वर्ग से महान है
इसके वास्ते ये तन है मन है और प्राण है
इसके कण-कण पे लिखा रामकृष्ण नाम है
धीर वीर के रुधिर से भूमि शस्य श्याम है
धर्म का ये धाम है सदा इसे प्रणाम है
स्वतन्त्र है वसुन्धरा स्वतन्त्र आसमान है
इसकी आन पे अगर जो बात कोई आ पड़े
इसके सामने जो जुल्म के पहाड़ हो खड़े
शत्रु सब जहान हो, विरुद्ध आसमान हो
मुकाबला करेंगे जब तक जान में ये जान है
इसकी गोद में हजारों गंगा यमुना झूमती
इसके पर्वतों की चोटियाँ गगन को चूमती
भूमि ये महान है, निराली इसकी शान है
इसकी जय पताका पे स्वयं विजय निशान है।

♦ ♦ ♦

ये वक्त की आवाज हैं ....

ये वक्त की आवाज़ है - मिल के चलो - २
ये जिन्दगी का राज़ है, - मिल के चलो
मिल के चलो, मिल के चलो, मिल के चलो
आज दिल की रंजिशें मिटा के आओ
आज भेदभाव सब भुला के आओ
आजादी से है प्यार अगर देश से है प्रेम
कदम कदम से और दिल से दिल मिला के आओ - २
मिल के चलो ....
जैसे स्वर से स्वर मिले हों राग के
जैसे शोले मिल के बढ़े आग के
जिस तरह चिराग से जले चिराग
वैसे चलो भेद तेरा मेरा त्याग के

♦ ♦ ♦

देश महान हमारा है ....

देश महान हमारा है हमको जां से भी प्यारा है
हर रंग के फूल जहाँ खिलते ऐसा ये चमन हमारा है
देश महान ....

गगन चूमते पर्वत यहाँ सागर की लहरें इठलाती
कल-कल करतीं नदियाँ पल-पल हैं संगीत सुनातीं
गंगा-यमुना-कृष्णा-कावेरी की बहती जहाँ धारा है
हर रंग ....

रामकृष्ण की जन्मभूमि ये अमर शहीदों की धरती
अद्‌भुत सुन्दरता को इसकी देख तबीयत न भरती
इसकी पावन मिट्टी को हर इक ने सर पर वारा है
हर रंग ....

आदर और सत्कार प्यार की मिलती है ये धूप यहाँ
अमन एकता का ऐसा यह रूप मिलेगा और कहाँ
भेदभाव नहीं धर्मजाति का यही हमारा नारा है
हर रंग ....

उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम का होता है मिलन यहीं
अमर वीरता कर्म का संगम नहीं मिलेगा और कहीं
कर्म यही है, धर्म यही है, तीरथ यही हमारा है
हर रंग ....

♦ ♦ ♦

देश की अखण्डता ....

देश की अखण्डता प्रणाम लो, प्रणाम लो
स्वदेश की अखण्डता प्रणाम लो, प्रणाम लो
देश की ....

तेरे चमन की गोद में तरह-तरह की झाँकियाँ, आ ऽ ऽ
नई दिशा नई गति नई सुबह नई फिजाँ, आ ऽ ऽ
अनेकता में एकता का नाम लो, प्रणाम लो
स्वदेश ....

उठो कि आज अपने प्रजातंत्र को सफल करो, आ ऽ ऽ
अखण्ड शक्ति का पैगाम लेके आज निकल पड़ो, आ ऽ ऽ
भाग्य की उदारता से काम लो, प्रणाम लो
स्वदेश ....

मिटा के भेदभाव मन्त्र ले लो देशभक्ति का, आ ऽ ऽ
नई फसल है लाल किला तेरी सैन्य शक्ति का, आ ऽ ऽ
विजय ध्वजा ये राष्ट्र का इनाम लो, प्रणाम लो
स्वदेश ....
देश की ....

♦ ♦ ♦

हम सब भारतीय हैं ....

हम सब भारतीय हैं, हम सब भारतीय हैं
अपनी मंजिल एक है आ हा हा एक है
ओ हो हो, एक है, हम सब भारतीय हैं - २

कश्मीर की धरती रानी है, सरताज हिमालय है
सदियों से हमने इसको अपने खून से पाला है
देश की रक्षा के खातिर हम शमशीर उठा लेंगे - २

बिखरे-बिखरे मोती हैं हम लेकिन झिलमिल एक हैं
आ हा हा, एक है, ओ हो हो एक हैं ....
हम सब ....

मंदिर, गुरुद्वारे भी हैं यहाँ, और मस्जिद भी है यहाँ
गिर्जा का है घड़ियाल यहाँ, मुल्ला की यही है अज़ाँ
एक ही अपना नारा है, एक ही अल्ला ताला है - २

बिखरे-बिखरे तारे हैं हम लेकिन झिलमिल एक हैं
आ हा हा ....
हम सब ....

सारी दुनिया में अब हम कोई जंग न होने देंगे
अब हम मानव को ऐसी मौत की नींद न सोने देंगे

देश की रक्षा ....
हम सब ....

♦ ♦ ♦

करो तुम कर्म निर्भय हो ....

करो तुम कर्म निर्भय हो धरा को जगमगाना है
नये निर्माण से नूतन नये सपने सजाना है

करम का मार्ग है लम्बा, जगत का अल्पजीवन है
बहा दो स्वेद कण श्रम से धरा की धूल मधुबन है
अरुणिमा के नये आलोक से जग जगमगाना है
नये निर्माण से ....

समन्वय स्नेह समता से, सँवारे देश हम अपना
बने यह विश्व में न्यारा, सभी साकार हो सपना
इसी भूखण्ड को ही स्वर्ग सा सुन्दर बनाना है।

नये निर्माण ....
करो तुम कर्म ....

♦ ♦ ♦

हिन्द देश के निवासी ....

हिन्द देश के निवासी सभी जन एक हैं
रंग रूप, वेश-भाषा चाहे अनेक हैं

बेला, गुलाब, जूही, चम्पा, चमेली
प्यारे-प्यारे फूल गूँथे माला में एक हैं

कोयल की कूक न्यारी, पपीहे की टेर प्यारी
गा रही तराना बुलबुल, राग मगर एक है

गंगा-यमुना-ब्रह्मपुत्र-कृष्णा-कावेरी
जाके मिल गई सागर में, हुई सब एक हैं
हिन्द ....

♦ ♦ ♦

ऊँचा खड़ा हिमालय ....

उँचा खड़ा हिमालय, आकाश चूमता है
नीचे चरण तले पर, नित सिन्धु झूमता है

गंगा यमुना त्रिवेणी, नदियाँ लहर रही हैं
जगमग छटा निराली, पग-पग छहर रही है
यह पुण्यभूमि मेरी, यह स्वर्णभूमि मेरी
यह जन्मभूमि मेरी, यह मातृ भूमि मेरी

झरने अनेक झरते इसकी पहाड़ियों में
चिड़ियाँ चहक रही है हो मस्त झाड़ियों में
अमराइयाँ यहाँ हैं, कोयल पुकारती है
बहते मलय पवन से, तन मन सँवारती है

यह धर्मभूमि मेरी, यह कर्मभूमि मेरी
यह मातृभूमि मेरी, यह पितृभूमि मेरी
जो भी यहाँ पर आया इसका ही हो गया है
नव एकता यहाँ की दुश्मन सहम गया है

ऋषियों ने जन्म लेकर इसका सुयश बढ़ाया
जग को दया सिखायी, जग को दया दिखाया
यह युद्धभूमि मेरी, यह बुद्धभूमि मेरी
यह जन्मभूमि मेरी, यह मातृभूमि मेरी।

♦ ♦ ♦

प्रेरणा

सबके लिये खुला ....

सबके लिये खुला है, मन्दिर है ये हमारा
मतभेद को भुलाता, मन्दिर है ये हमारा
आओ कोई भी पन्थी, आओ कोई भी धर्मी
देशी विदेशियों का मन्दिर है ये हमारा
सन्तों की उच्चवाणी-सब जन है भाई-भाई
सब देवता समाता, मन्दिर है ये हमारा
मतभेद होने पर भी मनभेद हो न पाये
हर एकता का हामी, मन्दिर है ये हमारा
मानव का धर्म क्या है मिलती है राह जिसमें
चाहता भला सभी का मन्दिर है ये हमारा
आओं सभी मिलेंगे, बैठेंगे प्रार्थना में
हम हिन्द के निवासी, मन्दिर है ये हमारा

♦ ♦ ♦

कर्म हाथ में है ....

कर्म हाथ में है हमारे, हम नहीं नसीब के सहारे
आ हा हा ....
समय की नदी की तेज धारा, हमने इस चुनौती को स्वीकारा
होड़ हम लगाएँगे, समय पर हम छा जाएँगे
जहाँ को हम दिखाएँगे, क्या हैं हौसले हमारे - २
कर्म हाथ ....
बादल के हम हैं वो टुकड़े, मिलकर एक साथ हम जो गरजें- २
बिजलियाँ चमक उठीं राहें रौशन हो गयीं
एकता की गरज से गूँज धरा झूम गया
क्या हैं हौसले हमारे - २

♦ ♦ ♦

लक्ष्य न ओझल होने पाए.......

लक्ष्य न ओझल होने पाए कदम मिलाकर चल
मंजिल तेरा पग चूमेगी आज नहीं तो कल

1- सबकी दौलत, सबकी मेहनत, सबकी हिम्मत एक
सबकी ताकत, सबकी इज्जत, सबकी किस्मत एक
शूल बिछे अगणित राहों में, राह बनाता चल

2- छोड़ किनारा कूद पड़ो, मझधार तुम्हारा डेरा,
खून पसीना बहा के अपना ला फिर नया सवेरा,
सीमाओं पर आज मचलता देशभक्ति का बल

3- नूतन वेदी बलिदानों की माँगे आज जवानी
देनी होगी हम सबको अब देश हेतु कुर्बानी
बलिदानों का ढेर लगा इतिहास बनाता चल
लक्ष्य न ....

♦ ♦ ♦

जय जन भारत ....

जय जन भारत जनमन अभिमत
जनगण तंत्र विधाता - २

1- गौरव भाल हिमालय उज्ज्वल, हृदय हार गंगाजल
कटि विन्ध्याचल सिन्धु चरण-तल महिमा शाश्वत गाता-२
जय जन ....

2- हरे खेत लहरें नद निर्झर, जीवन शोभा उर्वर
विश्वकर्मरत कोटि बाहुकर, अगणित पद ध्रुव पथ पर-२
जय जन ....

3- प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाता
जय नव मानवता निर्माता सत्य अहिंसा दाता
जय हे, जय हे, जय हे, शान्ति अधिष्ठाता

♦ ♦ ♦

प्रेरणा गीत ....

आ गया, आ गया, आज देखो आ गया
जागने का वक्त आ गया - २
आ ऽ ऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ

1- खून है स्वदेश के लिये, आन है स्वदेश के लिये - २
आबरू का यह सवाल है, जान है स्वदेश के लिये - २
गरजता तूफान आज इन दिलों में उठ गया
जो झकोर कर जगा गया - २
जगा गया ऽ ऽ ऽ

2- मौत की चुनौतियों को सुन जिन्दगी कभी नहीं रुकी-२
काल की कराल शक्ति से जिन्दगी कभी नहीं झुकी-२
जो जवान देश के लिये शहीद हो गया
मौत को वही झुका गया - २
झुका गया ऽ ऽ ऽ

3- सरहदों की वे पहाड़ियाँ झाँक कर हमें निहारती-२
लो सुनो वहाँ की घाटियाँ गूँजती हमें पुकारती - २
इंच-इंच भूमि हम स्वदेश की बचाएँगे
कफन बाँध प्रण ये कर लिया - २
कर लिया ऽ ऽ ऽ
जागने का ....

♦ ♦ ♦

स्तवन

वैष्णव जन तो लेने कहिये ....

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर परायी जाणे रे
पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे

सकल लोक माँ सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मातरे
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नवझाले हाथ रे

मोहमाया व्यापे नहिं जेने दृढ़ वैराग्य जेना मन मारे
रामनामशुँ ताली लागी सकल तीरथ तेना तन मारे

वणलोभी ने कपट रहित छे, काम, क्रोध निवार्या रे
भणे नरसैंयो तेनुँ दरसन करता कुण एकोतेर तार्या रे

वैष्णव जन ....

♦ ♦ ♦

सुमति दे हम सबको भगवान ....

सुमति दे हम सबको भगवान
करें सबका स्वागत सम्मान
सबको प्रेम सहित अपनाएँ
जीव मात्र को सुख पहुँचावें
करें नहीं अभिमान
हो सबका कल्याण
हो सबका कल्याण।

सीखें सबकी सेवा करना - २
सीखें सबकी सेवा करना
सीखें दुखियों के दुख हरना
सीखें दुखियों के दुख हरना
हो न कभी अभिमान
हो न कभी अभिमान
हो सबका कल्याण
हो सबका कल्याण
सुमति दे हम सबको भगवान।

अपना सा सुख सबका जाने
अपना सा सुख सबका जाने
अन्तरात्मा को पहचानें
अन्तरात्मा को पहचानें
करें नहीं अभिमान
करें नहीं अभिमान
हो सबका कल्याण
हो सबका कल्याण
सुमति दे हम सबको भगवान।

विद्या विनय विवेक बढ़ावें
काम क्रोध मद लोभ हटावें
गाये वेद विधान
गाये वेद विधान
हो सबका कल्याण
हो सबका कल्याण
सुमति दे हम सबको भगवान।

♦ ♦ ♦

शुभ जन्मदिन

जन्मदिनमिदम् अयि प्रिय सखे
शन्तनोतु ते सर्वदा मुदम्

प्रार्थयामहे भव शतायुषि
ईश्वरस्सदा त्वां च रक्षतु

पुण्य कर्मणा कीर्तिमर्जय
जीवनं तव भवतु सार्थकम्।

- *स्वामी तेजोमयानन्द*

♦ ♦ ♦

Prayer

Make God Your Guru......

Make God your Guru
Let him tell you what to do
Listen He's calling clear and true
Take time to listen
Take courage to obey
The inner voice is calling calling you.
There was a man in ancient time
Who humbly prayed this prayer
Speak Lord for thy servant heareth
And wherever you want me
Whatever I meant to do
I'm ready to do its for I am
Listening to you.

♦ ♦ ♦

Give me the body......

Give me the body, give me the mind and
give me the intellect to pray
O! all pervading O! omnipresent
Through out the night and the day

Work while you work and play while you play
That is the way to be happy and gay
All that you do, do with your mind
Things done half are never done right
Give me.......................

Do your work and your play
(But) set apart a little time for you to pray
When you grow up and when you go grey
It may be too late for you to pray
Give me......................

Life in short may be life is gay
(But) that's not a permanent place to stay
why not here and why not today
All together let us pray.

♦ ♦ ♦

लक्ष्य न ओझल होने पाए

लक्ष्य न ओझल होने पाए कदम मिलाकर चल
मंजिल तेरी पग चूमेगी आज नहीं तो कल

1- सबकी दौलत, सबकी मेहनत, सबकी हिम्मत एक
सबकी ताकत, सबकी इ़ज्जत, सबकी किस्मत एक
शूल बिछे अगणित राहों में, राह बनाता चल

2- छोड़ किनारा कूद पड़ो, मझधार तुम्हारा डेरा,
खून पसीना बहा के अपना ला फिर नया सवेरा,
सीमाओं पर आज मचलता देशभक्ति का बल

3- नूतन वेदी बलिदानों की माँगे आज जवानी
देनी होगी हम सबको अब देश हेतु कुर्बानी
बलिदानों का ढेर लगा इतिहास बनाता चल
लक्ष्य न ....

♦ ♦ ♦

प्रेरणा गीत

आ गया, आ गया, आज देखो आ गया
जागने का वक्त आ गया-२
आ ऽ ऽ ऽ   आ ऽ ऽ ऽ

1- खून है स्वदेश के लिये, आन है स्वदेश के लिये-२
आबरू का यह सवाल है जान है स्वदेश के लिये-२
गरजता तूफान आज इन दिलों में उठ गया
जो झकोर कर जगा गया - २
जगा गया ऽ ऽ ऽ

2- मौत की चुनौतियों को सुन ज़िन्दगी कभी नहीं रुकी-२
काल की कराल शक्ति से ज़िन्दगी कभी नहीं झुकी-२
जो जवान देश के लिये शहीद हो गया
मौत को वही झुका गया-२
झुका गया ऽ ऽ ऽ

3- सरहदों की वे पहाड़ियाँ झाँक कर हमें निहारती-२
लो सुनो वहाँ की घाटियाँ गूँजती हमें पुकारती-२
इंच-इंच भूमि हम स्वदेश की बचाएँगे
कफन बाँध प्रण ये कर लिया-२
कर लिया ऽ ऽ ऽ
जागने का ....

♦ ♦ ♦

जय जन भारत

जय जन भारत जन मन अभिमत
जनगण तंत्र विधाता-२

1- गौरव भाल हिमालय उज्ज्वल, हृदय हार गंगाजल
कटि विन्ध्याचल सिन्धु चरण-तल महिमा शाश्वत गाता-२
जय जन ....

2- हरे खेत लहरें नद निर्झर, जीवन शोभा उर्वर
विश्वकर्मरत कोटि बाहुकर, अगणित पद ध्रुव पथ पर-२
जय जन ....

3- प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाता
जय नव मानवता निर्माता सत्य अहिंसा दाता
जय हे, जय हे, जय हे, शान्ति अधिष्ठाता

♦ ♦ ♦

स्वरलिपि ताल-कहरवा

स्थायी

I

ग	ग	म	प	प	-	प	प
ज	य	ज	न	भा	ऽ	र	त
X				0			

प	प	ध	प	म	प	म	ग
ज	न	म	न	अ	भि	म	त
X				0			

0	गग	-म	प	प	-	सं	प
0	जन	-ग	ण	तं	ऽ	त्र	वि
X				0			

ध	-	ध	-	म	-	-	-
धा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

म	म	प	ध	सां	-	ध	प
ज	न	ग	ण	तं	ऽ	त्र	वि
X				0			

प	-	प	प	-	-	-	-
धा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

अन्तरा-I

प	-	प	प	सां	-	सां	सां
गौ	ऽ	र	व	भा	ऽ	ल	हि
X				0			

सां	-	रें	गं	सां	-	रें	रें
मा	ऽ	ल	य	उ	ऽ	ज्ज्व	ल
X				0			

रें	रें	रें	रें	-	गं	सांरें	सांनि
हृ	द	य	हा	ऽ	र	गंऽ	ऽऽ
X				0			

नी	-	नी	नी	धनि	सांनि	ध	प
गा	ऽ	ज	ल	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ
X				0			

॰	म	प	प	प	-	प	प
ऽ	क	टि	विं	ध्या	ऽ	च	ल
X				0			

रें	-	सां	नि	सां	ध	ध	ध
सिं	ऽ	धु	च	र	ण	त	ल
X				0			

॰	म	म	म	ध	-	ध	ध
॰	म	हि	मा	शा	ऽ	श्व	त
X				0			

सां	-	सां	-	प	-	-	-
गा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

दूसरी बार

प	-	प	म	ग	रे	सा	-
गा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

क्रम संख्या १ केवल एक बार दोहराइये।

अन्तरा-II

दूसरे अन्तरे की धुन पहले अन्तरे के समान है।

अन्तरा-III

प	प	प	प	–	प	प	ध
प्र	भ	म	स	ऽ	भ्य	ता	ऽ
X				0			

ध	नी	नी	–	–	–	–	–
ज्ञा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

प	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नीरें
सा	ऽ	म	ध्व	नि	त	गु	णऽ
X				0			

रें	–	सां	–	–	–नी	धनि–ध	प
गा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽ
X				0			

दूसरी बार

रें	–	सां	–	–	–	–	–
गा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

गं	गं	गं	गं	गं	–	गं	गं
ज	य	न	व	मा	ऽ	न	व
X				0			

गं	–	गं	सां	रें	–	रें	–
ता	ऽ	नि	र्	मा	ऽ	ता	ऽ
X				0			

रें	–	रें	रें	रें	–	नी	रें
स	ऽ	त्य	अ	हिं	ऽ	सा	ऽ
X				0			

रें	–	सां	–	–	–	–	–
दा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

दूसरी बार

सां	–	–	–	–	–	प	प
हे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज	य
X				0			

रें	–	–	–	–	–	प	प
हे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज	य
X				0			

गं	–	–	–	–	–	–	–
हे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

गं	–	रें	सां	रें	–	सां	नि
शां	ऽ	ति	अ	धि	ऽ	ष्ठा	ऽ
X				0			

सां	नी	ध	प	म	ग	रे	सा
ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

क्रम संख्या–**I** दोहराइये।

प	प	प	प	प	–	प	प
ज	न	ग	ण	वं	ऽ	त्र	वि
X				0			

ध	–	ध	–	–	–	–	–
धा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

ध	ध	ध	ध	ध	–	ध	ध
ज	न	ग	ण	तं	ऽ	त्र	वि
X				0			

नी	–	नी	–	–	–	–	–
धा	ऽ	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

नी	नी	नी	नी	नी	–	नी	नी रें
ज	न	ग	ण	तं	ऽ	त्र	वि ऽ
X				0			

रें	सां	सां	–	–	–	–	–
धा	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

स्वरलिपि ताल-तीन ताल

क्रम संख्या-I को बिना ताल गाइये

I	सा	सा	सा	सा	ग	ग	ग	ग
	ज	य	ज	य	ज	य	ज	य

प	प	प	प	सां	सां	–	–
ज	य	ज	य	ज	य	ऽ	ऽ

स्थायी

II	सां	सां	नी	ध॒	प	–	प	प
	ज	य	ज	य	हे	ऽ	भ	ग
	X				2			

प	प	प	मे	गमे	पमे	ग	ग
व	ति	सु	र	भाऽ	ऽऽ	र	ति
X				3			

o	गग	–ग	ग	मे	–	ग	रे॒
o	तव	ऽच	र	णौ	ऽ	प्र	ण
X				2			

सा	–	सा	सा	–	–	–	–
मा	ऽ	म	ह	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				3			

सा	–	सा	म	–	म	म	म
ना	ऽ	द	ब्र	ऽ	ह्म	म	यि
X				2			

o	गग	-ग	नी	नी	<u>ध</u>	प	प
o	जय	ऽवा	ऽ	गे	ऽ	श्व	रि
X				3			

o	गग	-ग	ग	मे	<u>ध</u>	नी	<u>रें</u>
o	शर	ऽणं	ऽ	ते	ऽ	ग	ऽ
X				2			

सां	-	सां	सां	-	-	-	-
च्छा	ऽ	म	ह	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				2			

क्रम संख्या-II एक बार गाइये।

अन्तरा-I

o	पप	-प	-प	<u>मे</u>	<u>ध</u>	प	-
o	त्वम	ऽसि	ऽश	र	ऽ	ण्या	ऽ
X				2			

o	पमे	-ग	<u>रे</u>	गमे	प	प	-
o	त्रिभु	ऽव	न	धऽ	ऽ	न्या	ऽ
o				3			

o	पप	-प	प	मे	<u>ध</u>	नी	<u>ध</u>
o	सुर	ऽमु	नि	वं	ऽ	दि	त
X				2			

प	प	प	प	-	-	-	-
च	र	णा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
o				3			

o	गग	-मे	ध	नी	नी	नी	-
o	नव	ऽर	स	म	धु	रा	ऽ
X				2			

o	गग	-मे	ध	सां	सां	सां	-
o	कवि	ऽता	ऽ	मु	ख	रा	ऽ
0				3			

o	सांसां	-सां	सां	सां	सोनि	मे	ध
o	स्मित	ऽरु	चि	रु	चिऽ	रा	ऽ
X				2			

सां	सां	सां	नि	ध	मे	ध	नी
भ	र	णा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
O				3			

क्रम संख्या-II केवल एक बार गाइये।

o	सा	-म	-	म	-	म	म
o	आ	ऽसी	ऽ	ना	ऽ	भ	व
X				2			

o	म	-म	मे	म	ग	ग	-
o	मा	ऽन	स	हं	ऽ	से	ऽ
0				3			

o	ग	-ग	-ग	मे	ध	नी	सां
o	कु	ऽन्द	ऽतु	हि	न	श	शि
X				2			

ध	सां	नि	-	-	-	-	-
ध	व	ले	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
0				3			

0	नी रें	- गं	रें	गं	-	गं	गं
0	ह र	ऽ ज	ड़	ता	म	कु	रु
X				2			

0	मे गं	- रे	सां सां	सां	-	सां	सां
0	बो ऽ	ऽ धि	ऽ वि	का	ऽ	सं	ऽ
0				3			

0	सां सां	- सां	सां	सां	सां नि	मे	ध
0	सि त	ऽ पं	ऽ	क	ज ऽ	त	नु
X				2			

सां	सां	सां	नि	ध	मे	ध	नी
वि	म	ले	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
0				3			

क्रम संख्या-II केवल एक बार गाइये।

तीसरे अन्तरे की धुन पहले अन्तरे के समान है अन्त में ऐसे गाइये।

0	0	मे	ध	प	-	प	प
0	0	प्र	ण	मा	ऽ	म	मः
3				X			

0	0	नी	रें	सां	-	सां	सां
0	0	प्र	ण	मा	ऽ	म	मः
2				0			

सारे जहाँ से अच्छा

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी, ये गुलसितां हमारा

1- परबत वो सबसे ऊँचा हमसाया आसमां का
वो संतरी हमारा वो पासबां हमारा

2- गोदी में खेलती हैं इसकी हज़ारों नदियाँ
गुलशन है जिनके दम से, रश्के जिनाँ हमारा

3- मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिन्दीं हैं हम, वतन हैं हिन्दोस्तां हमारा
सारे जहां ....

♦ ♦ ♦

स्वरलिपि

ताल-कहरवा

स्थायी

I	ग	गरे	सारे	-ऩी	सा	सा	-	-
	सा	रेऽ	जहां	ऽसे	अ	च्छा	ऽ	ऽ
	X				0			

प़ध़	सा	रेग	-म	ग	गरे	मग	रेसा
हिऽ	दो	स्तां	ऽह	मा	राह	माऽ	राऽ
X				0			

II	ग	गरे	सारे	-ऩी	सा	सा	-	-
	सा	ऽरे	जहां	ऽसे	अ	च्छा	ऽ	ऽ
	X				0			

III	गम	प	पप	-ग	मध	प	-	-
	हम	बुल	बुले	ऽहैं	इस	की	ऽ	ऽ
	X				0			

गम	प[ध]	मग	-रे	सा	सासा	सानि़	ध़प़
र्यऽ	गुल	सितां	ऽह	मा	राह	माऽ	राऽ

क्रम संख्या-I तथा II एक-एक बार गाएँ।

अन्तरा-I

गग	गग	ग	गम	गरे	रेसा	सा	-
पर	वत	वो	सब	सेऽ	ऊँऽ	चा	ऽ
X				0			

प़ ध़	सा	रे ग	– म	ग	ग	–	–
ह म	सा	याआ	ऽ स	मां	का	ऽ	ऽ
X				0			

ग म	प	प प	– ग	म ध	प	–	–
वो ऽ	सं	तरी	ऽ ह	मा ऽ	रा	ऽ	ऽ
X				0			

ग म	प[ध]	म ग़	– रे	सा	सा सा	सा नि़	ध़ प़
वो ऽ	पा ह	स बां	ऽ ह	मा	रा ह	मा ऽ	रा ऽ
X				0			

क्रम संख्या-I व II एक-एक बार गाएँ।

अन्तरा-II

सा प	प	प प	– ध	ग प	म ग	ग	–
गो ऽ	दी	मे खे	ऽ ल	ती ऽ	है ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

सा प	प	प प	– ध	ग प	म ग	ग	–
इ स	की	ह जा	ऽ रों	न दि	याँ ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

म	म म	म	म म	ग म	ग रे	सा ध़	सा रे
गु ल	श नु	है	जि न	के ऽ	द म	से ऽ	ऽ ऽ
X				0			

ग म	प[ध]	म ग़	– रे	सा	सा सा	सा नि़	ध़ प़
रश	के	जि नाँ	– ह	मा	रा ह	मा ऽ	रा ऽ
X				0			

क्रम संख्या-I व II एक-एक बार गाएँ।

अन्तरा-III

ऩी ऩी	ऩी ऩी	ऩो ऩी	- ऩी	ऩी सा	सा	-	-
म ज़	ह ब	न हीं	ऽ सि	खा ऽ	ता	ऽ	ऽ
X				0			

सा प	प प	प प	- ध	ग प	म ग	ग	-
आ ऽ	प स	मे बै	ऽ र	र ख	ना ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

सां	सां	सां सां	0	सां	सां	सां सां	0
हिं	दी	हैं हम	0	हिं	दी	है हम	0
X				0			

सां	सां	सां सां	- प	ग प	म ग	ग	-
हिं	दी	हैं हम	ऽ व	त न	है ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

ग म	प[ध]	म ग	- रे	सा	सा सा	सा ऩि	ध़ प़
हि ऽ	दो	स्तां	ऽ ह	मा	रा ह	मा ऽ	रा ऽ
X				0			

क्रमांक I, II, III तथा II को एक बार गाएँ।

ग	ग	ग ग	- रे	म	ग	-	-
सा	रे	ज हां	ऽ से	अ	च्छा	ऽ	ऽ
X				0			

प	प	प प	- ग	म ध	प	-	-
हिं	दो	स्तां	ऽ ह	मा ऽ	रा	ऽ	ऽ
X				0			

स्वरलिपि ताल-कहरवा

स्थायी

I	सा	-रे	सा	-रे	सा	-रे	सानि	प
	हि	ऽन्द	दे	ऽश	के	ऽनि	वाऽ	सी
	X				0			
	-	पनी	-सा	-नी	सारे	-रे	रे	-
	ऽ	सभी	ऽज	ऽन	एऽ	ऽक	हैं	ऽ
	X				0			
	म	-म	म	मग	रेग	-ग	रेसा	सानि
	रं	ऽग	रू	ऽप	वेऽ	ऽश	भाऽ	षाऽ
	X				0			
	-	नीसा	नीसा	रेरे	सा	-सा	सा	-
	ऽ	चाऽ	ऽहे	ऽअ	ने	ऽक	हैं	ऽ
	X				0			

अन्तरा

o ग-	रेग	-म		प	-प	प	प
o बेऽ	ऽला	ऽगु		ला	ऽब	जू	ही
X				0			
o प	-प	-ध		ग	प	म	ग
o चं	ऽपा	ऽच		मे	ऽ	ली	ऽ
X				0			

o	म	ग रे	सा सा	नी	– नी	सा रे	रे ग
o	प्या	रे प्या	ऽ रे	फू	ऽ ल	गूँ ऽ	थे ऽ
X				o			

–	म	ग रे	सा सा	सा	– सा	सा	–
ऽ	मा	ऽ ला	ऽ मे	ए	ऽ क	हैं	ऽ
X				o			

क्रम संख्या-I को केवल एक बार दोहराइये। शेष अन्तरे भी इसी प्रकार गाये जाएँगे। अन्त में 'हिन्द देश के निवासी सभी जन एक हैं' गाकर समाप्त कीजिए।

स्वरलिपि ताल-कहरवा

स्थायी

ग	–	ग	ग	ग	–	ग	–
मा	ऽ	न	व	ता	ऽ	के	ऽ
X				0			
सा	ग	ग	–	ग	ग	ग	–
म	न	मं	ऽ	दि	र	में	ऽ
X				0			
सा	ग	ग	ग	ग	–	म	ग
ज्ञा	ऽ	न	का	दी	ऽ	प	ज
X				0			
म	ग	रे	–	–	–	सा	नि
ला	ऽ	दो	ऽ	ऽ	ऽ	क	रु
X				0			
रे	–	रे	रे	–	रे	रे	ग
णा	ऽ	नि	धा	ऽ	न	भ	ग
X				0			
सा	–	ऩि	ऩि	ऩि	–	ऩि	–
वा	ऽ	न	मे	रे	ऽ	भा	ऽ
X				0			
सा	सा	रे	–	ग	–	सा	सा
र	त	को	ऽ	स्व	ऽ	र्ग	ब
X				0			

सा	-	सा	-	-	-	-	-
ना	ऽ	दो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

अंतरा-I

प	प	प	प	-	प	म	ग
दु	ख	द	रि	ऽ	द्र	का	ऽ
X				0			

प	-	प	प	प	-	प	-
ना	ऽ	श	क	रो	ऽ	मा	ऽ
X				0			

प	प	ध	-	म	-	ग	ग
न	व	के	ऽ	क	ऽ	ष्ट	मि
X				0			

म	-	म	-	-	-	-	-
टा	ऽ	दो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			

प	ध	ध	प	म	ग	रे	ग
अ	म	रि	त	की	ऽ	व	र
X				0			

म	ग	रे	सा	ऩि	-	ऩि	ऩि
षा	ऽ	ब	र	सा	ऽ	क	र
X				0			

प़	ऩि	ऩि	ऩि	सा	-	रे	रे
भू	ऽ	ख	की	आ	ऽ	ग	बु
X				0			

ग	रे	सा	–	–	–	–	–
झा	ऽ	दो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
X				0			
ग	–	ग	ग	–	ग	ग	ग
भे	ऽ	द	भा	ऽ	व	स	ब
X				0			
सा	ग	–	ग	ग	ग	ग	–
मि	टा	ऽ	ज	ग	ते	मे	ऽ
X				0			
सा	ग	ग	ग	ग	–	म	ग
प्या	ऽ	र	का	रं	ऽ	ग	फै
X				0			
म	ग	रे	–	–	–	सा	नि़
ला	ऽ	दो	ऽ	ऽ	ऽ	क	रू
X				0			

दूसरे अन्तरे की धुन पहले अन्तरे के ही समान है।

♦ ♦ ♦

योग और प्राणायाम ही स्वस्थ एवं प्रफुल्लित जीवन के आधार हैं।

अगर चाहते हो मिटें तन-मन के दुःख-शोक,
तो अपनी यह सीख है सब अपनाओ योग।

जो कमजोर होगा कहीं तन हमारा, तो असहाय मन क्या करेगा बेचारा।
न इहलोक का सुख न परलोक का ही, रहेंगे भटकते सदा बेसहारा।
अगर चाहते हो मिटे रंज सारा, तो पी.टी. और व्यायाम का लो सहारा।

स्वस्थ रहो सुखी रहो।

MAHARSHI PATANJALI VIDYA MANDIR
प्रज्ञानं ब्रह्म
PRAYAG